Chapter. 4

चतुर्थ अध्याय

निबन्ध साहित्य

प्रकार, वस्तु, विशेषता, भाषा-शैली, तथा निष्कर्ष ।

चतुर्थ अध्याय

निबन्ध साहित्य

परिभाषा एवं प्रकार :

हिन्दी गद्य साहित्य की नवीन विधाओं में निबन्ध सर्वाधिक विकसित एवं महत्वपूर्ण विधा है । समीक्षकों ने निबन्ध को वस्तुतः गद्य की कसौटी कहा है, जबकि संस्कृत में गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है – "गद्य कवीना निकषं वदन्ति" । प्राचीनकाल में निबन्ध का प्रयोग दार्शनिक तथा बौद्धिक अभिव्यक्ति के लिए होता था, किन्तु आधुनिक हिन्दी निबन्ध संस्कृत भाषा व साहित्य के निबन्ध से नितान्त भिन्न है तथा अंग्रेजी साहित्य के "ऐसों" से अधिक निकट है । गद्य की भाषायी अभिव्यंजना - शक्ति का सर्वाधिक प्रसार इसीविधा में होता है । इसके विषय की सीमा मानव–जीवन के समान ही विस्तृत है । यद्यपि इसमें बुद्धितत्व की प्रधानता रहती है, तथापि उसका सम्बन्ध हृदय – तत्व से भी बना रहता है ।

परिभाषा :

हिन्दी में निबन्ध का विकास अंग्रेजी निबन्धों के आधार पर ही होता है । अतः हिन्दी में निबन्ध शब्द अंग्रेजी के "एस्से" शब्द से पर्याय के रूप में व्यवहृत होता है । ऐस्से "शब्द का अर्थ है – प्रयास । प्रयास होने के कारण "ऐसे" या निबन्ध अपने मूल रूप में प्रौढ़ रचना नहीं मानी गयी है । प्रयास से तात्पर्य है किसी विषय के सम्बन्ध में कुछ कहने का प्रयास । यही प्रयास "ऐस्से" कहलाता है । इस प्रकार "ऐस्से" या निबन्ध

शिथिल मनः स्थिति में लिखित अव्यवस्थित और ढीली–ढाली रचना समझी जाती है । व्यवहार में विचार–प्रधान गम्भीर लेखों तथा भाव–प्रधान आत्म–व्यंजक रचनाओं, दोनों के लिए निबन्ध शब्द का प्रयोग होता है ई

निबन्ध को परिभाषित करते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है – निबन्ध उस गद्य रचना को कहते है, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो ।"[1]

आचार्य शुक्ल ने 'ऐस्से' शब्द का अर्थ निबन्ध लेते हुए उसके सामान्य लक्षण की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है – "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जो व्यक्तित्व या व्यक्तिगत विशेषता रखता हो ।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है – "यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है ।"

अंग्रेजी विद्वान डब्लू.ई. विलियम्स ने अत्यन्त.. न्यायक परिभाषा की और संकेत करते हुए लिखा है – "निबन्ध प्रायः लघु आकार की वह गद्य रचना होती है जो कहानी नहीं होती । वह कथात्मक प्रसंगों को अपनी बात स्पष्ट करने के लिए ले सकती है, वह उपन्यास के कुछ पृष्ठों को भी ले सकती है और अपने विचारों का स्पष्ट प्रतिपादन करने के लिए पात्रों की रचना भी कर सकती है, किन्तु उस की रूचि, उसका उद्‌देश्य कथाकार से भिन्न होता है । सामान्यतया निबन्धकार का कार्य सामाजिक, दार्शनिक आलोचक, व्याख्याकार का होता है । "निबन्ध का प्रमुख गुण" लेखक की अत्मपरकता या वैयक्तिकता है जिसके कारण निबन्ध में व्यक्तिगत पत्र या बातचीत की सी आंत्मीयता, निश्छलता, सम्मोहन तथा गोपनीयता आ जाती है ।"

---

1. मेरे निबन्ध (से) – बाबू गुलाबराय.

डॉ. जानसन ने "ऐस्से" (निबन्ध) को स्वच्छंद मन की तरंग माना था जिसमें तारतम्य और सुघटन के स्थान पर विश्रृंखलता का प्राधान्य रहता था ।" किन्तु अब अंग्रेजी में नवीन अर्थ में "ऐस्से" सीमित आकार एवं विस्तृत शैली में लिखी हुई रचना मानी जाती है ।

एक अन्य निबन्धकार ने लिखा है – "निबन्ध गद्य की वह सुगठित लघु आकार की रचना है, जिसमें लेखक किसी विषय की सीमित आकार में सुव्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध व्याख्या प्रस्तुत करता है" तात्पर्य निकलता है कि निबन्ध में विचारों को सुव्यस्थित ढंग से क्रमबद्ध रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है ।

किसी भी विषय का सम्यक्, पूर्ण और क्रमबद्ध विवेचन निबन्ध का गुण है । निबन्धकार उसमें अपने दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को प्रतिस्थापित करता है तथा विषय के प्रतिपादन में एक विशेष निजीपन भी प्रतिबिम्बित होता है । इस प्रकार निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व प्रमुख होता है । यह निबन्ध कार के मानस का उस समय का चित्र है, जिस समय वह किसी विषय से प्रभावित होता है । इसमें लेखक किसी भी विषय का पूर्ण विवेचन, विश्लेषण, परीक्षण, व्याख्या तथा मूल्यांकन करता है । वह विषय का निर्वाह स्वेच्छानुसार तथा स्व–दृष्टिकोण के अनुसार करता है, जिसमें वह स्वतन्त्र रहता है । अतः निबन्ध आत्म–परक होता है तथा इसमें आत्मीयता और भावमयता के साथ–साथ विचारों की तर्कपूर्ण अभिव्यक्ति भी होती है । यह एक छोटे आकार की ऐसी रचना है जिसमें सामान्य गद्य की अपेक्षा रोचक, सजीव और अर्थपूर्ण गद्य का विकास होता है । उसकी शैली में विशेष कलात्मक पूर्णता होती है । इसका अंश जीवन की भाँति व्यापक तथा विस्तृत है, तथापि इसमें सीमा एवं विशिष्ट कला के अनुरूप ही विषय का चुनाव होता है । वह अपने आप में पूर्ण होता है ।

निबन्ध के प्रकार :

प्रथमतया निबन्ध के दो प्रमुख रूप ये हैं –

(क) **विषय–प्रधान निबन्ध :**

जब लेखक में स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता होती तो विषय–प्रधान निबन्ध विचारातमक बन जाता है ।

(ख) **व्यक्तित्व–प्रधान निबन्ध :**

जब लेखक में अनुभूति की तीव्रता होती है तो उसका निबन्ध भावात्मक हो जाता है । इनमें कभी कल्पना–तत्व की प्रधानता रहती है, तो कभी ये विशुद्ध हास्य अथवा व्यंग्यमूलक भी होते हैं ।

भेदक तत्व :

विषय एवं शैली तत्वों के आधार पर निबन्ध के चार भेद किए जा सकते हैं –

1. विचारात्मक,
2. वर्णनात्मक,
3. विवरणात्मक और
4. भावात्मक निबंन्ध ।

1. विचारात्मक निबन्ध :

इस प्रकार के निबन्धों में बुद्धितत्व की प्रधानता रहती है तथा विचार कूट–कूट कर भरे जाते हैं । इनमें तर्कपूर्ण विवेचन, विश्लेषण एवं गवेषणा का आधिपत्य रहता है तथा विषय भी अधिकांशतः दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, शास्त्रीय, विवेचनात्मक आदि होते हैं । इसके लेखक के लिए चिन्तन, मनन तथा अध्ययन की अधिक अपेक्षा होती है । विचारात्मक निबन्ध के पुनः तीन उप–भेद किए जा सकते हैं –

(क) आलोचनात्मक,

(ख) विवेचनात्मक,

(ग) गवेषणात्मक ।

आलोचनात्मक निबन्ध के पुनः दो उप–रूप मिलते हैं –

(I) सैद्धान्तिक आलोचनात्मक निबन्ध और

(II) व्यवहारिक आलोचनात्मक निबन्ध

विचारात्मक निबन्धों में जब आलोचना महत्वपूर्ण होती है तो वे आलोचनात्क बन जाते हैं और जब उनमें गवेषणा का महतव होता है तो वे गवेषणात्मक बन जाते हैं । इनमें भिन्न विवेचना में किसी विषय का सम्यक् अवलोकन होता है । और लेखक अपनी प्रतिभा से विषय पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास करता है । इन निबन्धों की दो प्रमुख शैलियाँ हैं–

(क) समास शैली और

(ख) व्यास शैली

2. <u>वर्णनात्मक निबन्ध</u> :

इन निबन्धों में किसी भी वर्णनीय वस्तु, स्थान, व्यक्ति, दृश्य आदि का निरीक्षण के आधार पर आकर्षक, सरस तथा रमणीय रूप में वर्णन होता है । इसकी शैली दो प्रकार की होती हैं – एक में यथार्थ वर्णन तथा दूसरी में अलंकृत वर्णन होता है । यथार्थ वर्णन सूक्ष्म निरीक्षण तथा निजी अनुभूति के आधार पर होता है तथा अलंकृत वर्णन में कल्पना का प्राचुर्य होता है । इन निबन्धों में चित्रात्मकता, रोचकता, कौतूहल तथा मानसिक प्रत्यक्षीकरण कराने की क्षमता होती है । शैली सरल, सुबोध तथा सरस होती है । इनमें प्राकृतिक दृश्यों, पर्वो स्थानादि का वर्णन भी प्रमुख होता है ।

3. <u>विवरणात्मक निबन्ध :</u>

इनमें किसी वृत्तान्त या घटना का विवरण होता है तथा समय–तत्व की प्रधानता रहती है । फलतः ऐतिहासिक तथा सामाजिक घटनाओं, स्थानों, दृश्यों, यात्राओं तथा जीवन के अन्य विविध कार्य–कलापों का विवरण दिया जाता है । इनमें आख्यानात्मकता का पुट रहता है । तथा विषय–वस्तु के प्रत्येक ब्यौरे का सुसम्बद्ध विवरण रोचक, हृदयग्राही एवं क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया जाता है । इनकी शैली भी सरल, आकर्षक, भावानुकूल, व्यावहारिक तथा चित्रात्मकता लिए होती है ।

4. <u>भावात्मक निबन्ध :</u>

यदि निबन्ध किसी भाव सूत्र में संग्रथित होता है, तो उसे भावात्मक कहा जाता है । इन निबन्धों में हृदय–तत्व अथवा रागात्मकता की प्रधानता होती है । इनका लक्ष्य पाठक की बुद्धि की अपेक्षा उसके हृदय को प्रभावित करना होता है । लेखक की अनुभूति भी तीव्र होती है । भाषा सरल, सुन्दर, ललित तथा मधुर होती है वाक्य–विन्यास भी सरल तथा शैली कवित्वपूर्ण होती है तथा भावों को उत्कर्ष प्रदान करने हेतु कल्पना एवं अलंकारों का समुचित प्रयोग किया जाता है । ये निबन्ध भी दो प्रकार के होते हैं –

(1) अनुभूति प्रधान निबन्ध तथा

(2) कल्पना प्रधान निबन्ध ।

इन निबन्धों की ये दो शैलियाँ होती हैं –

(क) धारा शैली और

(ख) विक्षेप शैली ।

गोविन्द मिश्र के निबन्ध इन्हीं प्रकारों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं – मुख्यतया "साहित्य का सन्दर्भ" के निबन्ध विचारात्मक निबन्धों की श्रेणी में गिने जा सकते हैं, क्योंकि इन निबन्धों के तर्कपूर्ण विचारों की प्रधानता है तथा यत्र–तत्र आलोचनात्मक विचारों को भी समाहित किया गया है । इन निबन्धों में विवेचना, गवेषणा तथा विश्लेषण पद्धति के साथ बुद्धि तत्व का भी प्राधान्य देखा जा सकता है ।

"कथा–भूमि" कृति के निबन्ध वर्णनात्मक एवं भावात्मक निबन्धों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं । इन निबन्धों में बाँदा, इलाहाबाद, इंग्लैंड जैसे देश–विदेशों के आधार पर स्थान–चित्रण, बुन्देली महाकवि ईसुरी, जनतान्त्रिक कवि मैथिली शरण गुप्त, कलात्मक छल से दूर–टैगोर की कहानियाँ निबन्धों के आधार व्यक्तित्व विश्लेषण होने से वर्णनात्मक निबन्धों का रूप माना जा सकता है । अन्यत्र भावों की प्रधानता होने के कारण अन्य निबन्ध भावात्मक निबन्धों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं । श्री गणेश शुक्ल ने लिखा है कि – "कथा–भूमि" के अधिकांश आलेख व्यक्तिगत निबन्ध हैं । ये निबन्ध मिश्र जी के समस्त लिखे हुए, को और स्पष्ट करते हैं तथा उनके मूल विचारों तक पहुँच सकने की सामर्थ्य का विकास करते हैं ।[1]

फलतः अनुभूति की तीव्रता तथा व्यक्तिगत चिन्तन की गहनता के कारण ये भावात्मक निबन्धों की श्रेणी में ही गणना योग्य हैं ।

वस्तु–तत्व :

वास्तव में, स्वच्छन्दता और व्यक्तिगत विशेषता निबन्ध के दो प्रमुख तत्व हैं । पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इन प्रमुख तत्वों का विश्लेषण करते हुए लिखा है – निबन्ध लेखक

---

1. भीड़ से झाँकता चेहरा – गोविन्द मिश्र के निबन्ध – गणेश शुक्ल – गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम - पृष्ठ 310–311.

अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र-शाखाओं पर विचरता चलता है । यही उसकी अर्थ-सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है । अर्थ-सम्बनधी सूत्रों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ ही भिन्न-भिन्न लेखकों का दृष्टि पथ निर्दिष्ट करती हैं । एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी सम्बन्ध-सूत्र पर दौड़ता है । किसी का किसी पर । इसी का नाम है – एक ही बात को भिन्न- भिन्न दृष्टियों से देखना । व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है ।"

निबन्ध – लेखक वैज्ञानिक या तत्व-चिन्तक से भिन्न होता है । उसकी चिन्तन शैली में बुद्धि और भावात्मक हृदय का समन्वय रहता है । गोविन्द मिश्र ने भी अपने निबन्ध-लेखक के विषय में स्पष्ट. करते हुए "साहित्य का सन्दर्भ" संकलन की भूमिका में लिखा है – "ईश्वर जीवन.... मनुष्य की तरह साहित्य का भी विस्तार अनन्त है.... थोड़ा कुछ वह जो हम समझ पाते हैं, पर बहुत कुछ वह जो समझ से परे है जिसका आभास हो जाता है कभी-कभी । हमारी अनुभूति कहीं-कहीं से उसे छू लेती है और फिर हम उसे व्याख्यांकित करने की कोशिश करते हैं । मुझे साहित्य की सीमाओं में बाँधने के प्रयास बचकाने लगते हैं । हर देश और हर युग में ऐसे प्रयास किये गये, पर ईश्वर, जीवन, मनुष्य की तरह साहित्य पर अन्तिम रूप से कभी कुछ नहीं कहा जा सकता । लेखक भी प्रवाह का एक कतरा है – अनन्तता के प्रवाह का एक दीप, जिसे कोई भ्रम नहीं है कि उसका प्रकाश कितनी दूर फैलेगा । भारतीय मानस की बुनावट जिन रेशों से निर्मित हुई है उसमें समर्पण भाव का रेशा हमेशा मुख्य रहा है ।"[1]

1. साहित्य का सन्दर्भ (निबन्ध-संकलन) :

सन् 1985 में प्रकाशित साहित्य का सन्दर्भ सर्जना, कथा-दशा और सन्दर्भ खण्डों में विभक्त 15 निबन्धों का संकलन है ।

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – भूमिका – गोविन्द मिश्र.

"साहित्य का सन्दर्भ":

संकलन में संकलित निबन्धों का वस्तु-विवेचन इस प्रकार है –

1. लेखन और समाज परिवर्तन :

इस प्रथम निबन्ध में लेखक की चिन्ता का मुख्य बिन्दु वह औद्योगिक एवं महाजनी संस्कृति है जिसके प्रदूषण को लेकर हिन्दी का लेखक ही क्यों, प्रत्येक भाषा में लिख रहे रचना धर्मी चिन्तित रहे हैं। उपभोक्ता संस्कृति ने सुरसा के मुख की तरह हमें फँसा रखा है तथा हम उसके मुँह में खड़े नीचे ऊपर के नुकीले दाँतों के बीच पिस जाने की यन्त्रणा के संक्रमण-काल में असहाय से अनुभव करने लगे हैं। साठोत्तरी पीढ़ी में व्यक्ति लेखक, समाज तथा साहित्य के बीच के रिश्तों में उपभोकता संस्कृति प्रमुख बाधा के रूप में खड़ी हो गयी है। शनैः शनैः एक ओर जहाँ पोरों पर गिनने लायक अच्छे उपन्यास और कहानियों की रचना हो रही है वहीं दूसरी ओर मीडिया के प्रचार-तन्त्र के माध्यम से एक नये किस्म के मशीनी लेखक का भी उदय हुआ है। लेखन का मूल-बिन्दु कहीं दलगत और कहीं एक निश्चित विचारधारा का पृष्ठ पोषण करने में समाहित तथा संकुचित होकर रह गया है। साहित्य देश को सुदृढ़ सांस्कृतिक आधार प्रदान करता है। वह व्यक्ति को सीधे क्रान्ति की आग में नहीं झोंकता, बल्कि उसमें उस सामर्थ्य का विश्वास जगता है, जहाँ वह सिर उठाकर प्रश्न पूछने लगे साहित्य का प्रभाव मूलतः नैतिक, मन्द, किन्तु स्थायी होता है। गोविन्द मिश्र का समकालीन लेखन से असन्तोष स्पष्ट उभर कर सामने आता है, क्योंकि उनके अनुसार आज का लेखन वह संबल प्रदान नहीं कर पा रहा जिसकी अपेक्षा साहित्य से की जाती है। मुख्य कारण यही है कि वर्तमान लेखन जीवन के कुरूप पर ही अधिक ध्यान देता है। साहित्य का असली स्वर तात्कालिकता का नहीं, अपितु शाश्वत का होता है और इसी कारण लेखक को तात्कालिक प्रभाव के उद्देश्य को सामने रखकर ही लेखन कार्य में संलग्न नहीं होना चाहिए।

2. लेखक की जमीन :

इस निबन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. लोठार लुत्से से हाइडिलवर्ग (जर्मनी) में हुई गोविन्द मिश्र की "रचना-प्रक्रिया" के मूल-बिन्दु को व्याख्यायित करती एक लम्बी वार्ता प्रस्तुत की गई हे, जिसमें रचना-प्रक्रिया पर गहराई से विचार किया गया है । नया प्रतीक में प्रकाशित होने के बाद यह निबन्ध पुनः इस संग्रह में संकलित किया गया है । तत्पश्चात् "लेखक की जमीन" नाम से प्रकाशित लेखक की भेंट वार्ता संकलन में भी इसे स्थान मिला है । विभिन्न कहानियों और 'लाल-पीली जमीन" उपन्यास के सन्दर्भ में रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है । चैकोस्लोवाकिया ने एक श्रोता छात्र के प्रसंग में "कचकौंध" कहानी की प्रेरणा को प्रस्तुत करना चाहा है । पुनः उपन्यास और कहानी का अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । भाषा-प्रयोग और वस्तु के विषय को भी उठाया गया है तथा विभिन्न प्रश्नों की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न दृष्टिगत होता है ।

हिन्दी-लेखन प्रेम चन्द्र एवं जैनेन्द्र जी का सदैव ही ऋणी रहा है । सम्भवतः इन दो साहित्यकारों ने हिन्दी मानस को जितनी तीव्रता से प्रभावित किया है, उस प्रकार दूसरों ने नहीं किया है ।

3. "प्रेम चन्द और हमारा बौनापन" :

हिन्दी का प्रत्येक लेखक मुंशी प्रेमचन्द्र पर वार्ता करना और लिखना चाहता रहा है । मिश्र जी ने भी इस निबन्ध में बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेम चन्द्र के इस व्यापक प्रभाव की चर्चा की है । प्रेम चन्द्र जी का प्रयोग साहित्य के पृथक-पृथक शिविरों के महन्तों ने अपनी-अपनी विचारधारा के परिपोषण के लिए किया है । गोविन्द मिश्र ने इस निबन्ध में कुछ मूल तथ्यों को उजागर किया है । उदाहरणतः - प्रेम चन्द अपने समकालीन राजनीतिक आन्दोलन से प्रायः दूर ही रहे तथा सरकारी ताने-बाने के भीतर "सबडिप्टी-इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स" की नौकरी भी काफी समय तक करते रहे । उनकी

लेखन के प्रति जो प्रतिबद्धता थी, वही उनकी मूल शक्ति भी थी । यही कारण था कि समाज–परिवर्तन का उनका मार्ग हृदय–परिवर्तन का मार्ग था । वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि बिना चरित्र में बदलाव आये भी कोई परिवर्तन स्थायी रूप ले सकता है । कुछ उदाहरण देकर लेखक ने अपने व्यक्ति विचार को प्रमाणिति करना चाहा है ।

4. आज की कहानी – एक सर्वेक्षण :

निबन्ध में गोविन्द मिश्र ने कहानी–कला में निरन्तर आते गये बदलाव पर विचार करते हुए जैनेन्द्र की रचना–प्रक्रिया और हिन्दी–कहानी के विकास में उनके योगदान पर विस्तार से चर्चा की है । प्रसिद्ध कहानीकार आचार्य जैनेन्द्र जी ने कहानी में "तनाव" का श्रीगणेश किया, यद्यपि यह तनाव श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की "उसने कहा था तथा श्री जय शंकर प्रसाद की कुछ कहानियों में मानसिक संघर्ष के रूप में आया है, पर जैनेन्द्र जी के यहाँ यह संघर्ष वातावरण, चरित्र–चित्रण जैसे कहानियों के और अंगों को दाबता हुआ उठता दिखता है । हर कहानी तनाव को लेकर ही घूमती है । श्री मिश्र यह मानते हैं कि जैनेन्द्र का कहानी–संसार कल्पना एवं यथार्थ का एक मिश्रण है जिसमें व्यापकता है । जैनेन्द्र की परम्परा में प्रसिद्ध कथाकार एवं कवि श्री अज्ञेय जी की कहानियों की जाँच–परख हमेशा से की जाती है । यशपाल जी के लेखन पर भी लेखक की टिप्पणी उत्सुकुता को जगाती है । जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपाल – तीनों में एक सामान्य बात कहानीकार के साथ–साथ चिन्तक होने की प्रवृत्ति का पाया जाना भी है । यही कारण है कि प्रायः हिन्दी में प्रेम चन्द एवं जैनेन्द्र को जिन दो विचारों में विभाजित किया जाता रहा है, उसे विद्वान "जन और मन" में बाँटते आये हैं । प्रेमचन्द जी जहाँ एक ओर साहित्य में "जन' व्यापक स्वरूप की चर्चा करते रहे थे, वही दूसरी ओर जैनेन्द्र जी ने "मन" में उठी तरंगों का श्रीगणेश कहानी में किया । श्री मिश्र ने जैनेन्द्र के बाद नयी कहानी और साठोत्तरी कहानी कारों की चर्चा की है । वस्तुतः यह निबन्ध हमें समकालीन हिन्दी कहानी के इतिहास से परिचित कराता है तथा व्यापक फलक पर हिन्दी कहानी के विकास का मूल्यांकन भी करता

है । वर्तमान में लिखी जा रही कहानियों पर भी लेखक के विचार कुछ गम्भीर साहित्यिक प्रश्नों को उठाते हैं जैसे परिवेश और वैयक्तिकता के मूल बिन्दु ।

"आज की कहानी – एक सर्वेक्षण" निश्चित ही हिन्दी कहानी की समझ के लिए पढ़ा जाना चाहिए । समकालीन मानसिकता तथा उससे उठते प्रश्नों पर विस्तार से विचार के लिए हिन्दी कहानी के परिप्रेक्ष्य में जाने का श्री मिश्र का आग्रह एक सजग लेखक की चिन्ता को प्रमाणित करता है । उन्होंने अनेक कहानीकारों और उनकी कहानियों को आधार बनाकर अपने विचार व्यक्त किए हैं ।

5. **समकालीन कथा–साहित्य और आज का आदमी :**

इस निबन्ध में आम आदमी के नारे पर विचार व्यक्त किया गया है तथा यथार्थ के प्रति उत्पन्न हुए अतिरिक्त आग्रह के पीछे छिपे कारणों की जाँच–पड़ताल की गयी है ।साम्यवादी व्यवस्था के तंग घेरे में लिखे जा रहे साहित्य के पीछे की मानसिकता के प्रति खोज लेख में स्पष्ट प्रतीत होती है । लेखक का यह निश्चित मत है कि साहित्य किसी भी तरह समाज से कटी हुई चीज बन कर नहीं रह सकता,लेकिन समाज की नयी–नयी आवश्यकताएं और व्यक्ति एवं समाज के अविच्छिन रिश्तों के नये–नये कोण लेखक से सावधानी की मांग निरन्तर करता है अर्थात प्रत्येक कथा को विशेष विचारधारा जैसी एक ही परिणति देना–यह समर्पण उचित नहीं है । लेखक की निजता की छाप कहानी पर होनी ही चाहिए । श्री मिश्र के इस अभिमत पर यहाँ यह परिचर्चा की जा सकती है कि लेखक का एक भावलोक तो होता है,परन्तु सामूहिक रूप में वह एक दिशाक्रम की आवाज के रूप में भी आ सकता है, एक युग सत्य का रूप ले सकता है । गुटबन्दी अथवा पृथकताबाद अवश्य एक उलझी साहित्यिक–राजनीतिक स्थिति का निर्माण करते हैं जहाँ आम आदमी भी खो जाता है । आम आदमी की स्थिति की चिंता गोविन्द मिश्र की चिन्ता है ।

"एक गलती हमने अंग्रजीयत को ओढ़कर की जिसकी अंकल–आंटी कल्चर में हमारे मध्यवर्ग का खोख्लापन लगातार बजता रहता है । दूसरी गलती हम करेगें, अगर आदमी को सिर्फ पेट मानकर चलेगें ।"आवश्यकता इसकी है कि जिन मूल्यों के लिए हम अन्नतः विसंगतियों को उभार रहे हैं, उन मूल्यों को ओझल न होने दें । इन मूल्यों की खोज ही रचना धर्मिता का मुख्य स्वर होना चाहिए । निबन्ध तीन विभागों "यर्थात का तंग घेरा', "सवाल है लेखकों के आचरण का" और "साहित्य में भी राजनीतिज्ञ" – में विभक्त कर प्रस्तुत किया गया है ।

6. हिन्दी उपन्यास जातीय संभावनाएं –

इस लेख में लेखक मिश्र ने उपन्यास–साहित्य की विकास यात्रा की खोज करते हुए पुनः यर्थाथवाद पर विस्तृत रूप से विचार–विमर्श किया है । यर्थाथवाद के नाम पर रचना–जगत के निरन्तर छोटा होते जाने पर लेखक की चिन्ता प्रासगिक है । श्री मिश्र जी की यहमान्यता है कि प्रेमचन्द की पीढ़ी के पश्चात् हिन्दी में उपन्यास–लेखन लगातार दबता गया है । जितनी सक्रियता से कहानी–विघा का विकास हुआ, उसकी तुलना में उपन्यास कुछ थोड़ा–सा उपेक्षित ही रहा । उपन्यास का कलेवर छोटा किया गया, लघु उपन्यास, उपन्यासिका जैसे शब्द प्रचलित किये गये । बड़े कनैवस को लेकर लिखे जाने वाले उपन्यास में जिस सतकर्ता एवं धैर्य की आवश्यकता होती है, वह भी बहुत–से लेंखकों के पास नहीं होता है । उस धैर्य को अपने अन्दर विकसित करने का धैर्य प्रायः इस व्यस्त वातावरण में लेखक स्थापित नहीं कर पाता है, नही स्थिर रख पाता है । श्री मिश्र जी ने जो कारण बतलायें हैं, उनके अतिरिक्त और भी कारण हो सकते हैं, क्योंकि समाज बहु–आयामी है और उससे उत्पन्न समस्याएं भी बहु–आयामी रूप ले लेती हैं । किन्तु एक कारण धैर्य की कमी–बह तो लेखक के हिस्से में आ ही जाती है । बहुकोणीय सामाजिक यर्थाथ को उसके पूरे पन के साथ उठा पाने के साहस की कमी एक मुख्य कारण है जिसमें प्रायः लेखक उस समूचे यर्थाथ को खंडों में विभक्त कर एक खंड को अपने लेखन का विषय बना लेता है और इसी को "उपान्यासिका" आधुनिक नाम दे दिया जाता है ।

मिश्र जी ने इस मान्यता पर मतभेद प्रकट किया है कि हिन्दी उपन्यास पश्चिम से आयी हुई विधा है । वे मानते हैं कि हिन्दी उपन्यास संस्कृत कथा साहित्य की दो धराओं – कलासिकल कथात्मकता और लोकप्रिय उपदेशात्मक कथात्मक (हितोपदेश, पंचतंत्र) के बीच से ही निकला है ।

7. उपन्यास बनाम उपन्यासिका :

इस लेख में मिश्र जी ने प्रेम चन्दोततर उपन्यास लेखन की अवनति का स्मरण किया है तथा उपन्यास के स्थान पर लघु उपन्यास और उपन्यासिका जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा है । उन्होंने कहा है कि जो उपन्यास नहीं लिख सके, उन्होंने अपनी सुविधा के लिए यह नाग गढ़ लिया । मिश्र जी को यह बात भी रास नहीं आती कि कहानी का युग समाप्त हो गया है । आज कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं और उपन्यास भी । उपन्यास एक चिर विधा है । किन्तु लघु उपन्यास और उपन्यासिका एक तरह का मिश्रित प्रारूप है ।

8. उपन्यास की मृत्यु का प्रश्न :

आधुनिक प्रसिद्ध लेखक श्री निर्मल वर्मा जी के निबन्ध "उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म" के बहाने मिश्र ने उनकी लेखन–कला विचार व्यक्त किए हैं । निर्मल वर्मा पर यह आरोप लगता रहा है कि उनके उपन्यासों और कहानियों में विदेशी मानस का प्रभाव एवं दबाव है । उनमें एक प्रकार के ही चित्र एक ही सधी–सधाई भाषा के साथ उपस्थित होते रहे हैं । कुछ अर्थो में ये आरोप सही भी रहे हैं, पर गोविन्द मिश्र के अनुसार निर्मल वर्मा जी मन मूलतः एक भारतीय का ही मन है जो उन्हें भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की ओर बराबर ढकेलता है । इस निबन्ध में हिन्दी उपन्यास पर पश्चिमी उपन्यासों के प्रभाव का चित्रण भी किया गया है ।

ग्रन्थ के अन्तिम खण्ड को "रचना" नाम दिया गया है, जिसमें सर्वश्री भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, महेन्द्र भल्ला, कृष्णा सोबती और राजी सेठ के उपन्यासों एवं कहानियों अर्थात् कहानी–संग्रहों के माध्यम से इन लेखक–लेखिकाओं की रचना धर्मिता पर उपयोगी विचार प्रस्तुत किए गए हैं ।

9. **"ऐतिहासिकता और मानवीयता के बीच"** :

निबन्ध में श्री भीष्म साहनी के प्रसिद्ध उपन्यास "तमस" के माध्यम से उपन्यास के "फैलाव और पसराव" की चर्चा की गयी है । श्री गोविन्द मिश्र "तमस" को एक अच्छी कोटिका उपन्यास स्वीकार करते हैं । वह यह भी मानते हैं कि "तमस" की पृष्ठ संख्या के आधार पर बृहद् उपन्यास में उसे सम्मिलित न भी किया जा सके, परन्तु उसका "फैलाव और पसराव" तथा कथा की विशालता उसे इसी श्रेणी में ला देती है । श्री गोविन्द मिश्र इसके हिस्सों को "गठन और सघनता" के अभाव में स्वतन्त्र कहानियों के रूप में अधिक पठनीय मानते हैं । एकान्विति का अभाव उन्हें उपन्यास में खटकता है । तथा सूत्रबद्धता की कमी भी उसमें दृष्टिगोचर होती है । गठन की दृष्टि से उन्हें उपन्यास का प्रथम खण्ड सबल लगता है ।

"तमस" एक व्यापक सन्दर्भ को लेकर चलने वाला उपन्यास है । उपन्यास में लेखक का राजनैतिक सोच भी स्पष्ट झलकता है । यह लेख "तमस" के दूरदर्शन के पर्दे पर आने से पूर्व ही लिखा गया एवं छपा है । इसके प्रदर्शन के पहले ही भारतीय राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों ने भीष्म साहनी की राजनैतिक विचार धारा पर गम्भीर प्रश्न उठाये थे जिनकी व्यापक रूप से प्रतिक्रिया हुई थी । एक व्यापक फलक की समस्याओं को "तमस" में समाहित किया गया है । यह निश्चित है कि समस्याओं का यह बृहदीकरण उपन्यास के गठन और कसाव को प्रभावित तो करता ही है । "तमस" में जिस काल खण्ड को उठाया गया है, वह अत्यन्त परिचित एवं प्रसिद्ध कालखण्ड रहा है तथा साथ ही साथ विवादास्पद भी

भी रहा है । निश्चित है कि इस व्यापक स्तर के विषय पर लिखते समय कुछ–न–कुछ छूट जाना स्वाभाविक–सा ही है । यही कारण है कि श्री गोविन्द मिश्र उपन्यास में जब राजनैतिक पृष्टभूमि की कमी पाते हैं । तब वह चौंकाने वाली बात नहीं होती ।

10. <u>लेखक का होना</u> :

इस लेख में मिश्र जी ने "लेखक होने" अर्थात् लेखक की दुर्दशा पर पीड़ा व्यक्त की है, मानों लेखक का होना आज के समय में एक विडम्बना हो गया है । यह उस व्यक्ति का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा जो लेखक है या होना चाहता है । हिन्दी लेखक श्री निर्मल वर्मा को लक्ष्य बनाकर मिश्र ने हिन्दी लेखक की व्यथा कथा प्रस्तुत की है, क्योंकि आज के लेखक पर आरोप लगाये जाते हैं, छीटाकसी की जाती है उसे उचित सम्मान भी नहीं मिलता है । लेखक का अकेलापन यातनामय बन जाता है । श्री निर्मल वर्मा के कुछ निबन्ध–संग्रहों एवं निबन्धों के उदाहरणों से मिश्र ने लेखक की पीड़ा को उजागर किया है तथा उनकी विदेशी सोच को भी भारतीय सोच से जोड़ने का प्रयास किया है ।

11. <u>भोगे हुए यथार्थ की सीमाएँ</u> :

इस निबन्ध में श्री महेन्द्र भल्ला जी के उपन्यास "दूसरी तरफ" पर विचार किया गया है । गोविन्द मिश्र की स्थापना है कि सिर्फ अपने भोगे हुए अनुभवों को ज्यों का त्यों रख देने मात्र से ही कोई कृति साहित्य नहीं हो जाती । यथार्थ का भोगना लेखक की शक्ति बनने की अपेक्षा सीमा भी बन सकता है । विशेष रूप से तब, जब लेखक को स्वयं से मोह हो और वह अपने अनुभवों को उपन्यास में लाने का लोभी बन जाये । मिश्र जी ने "दूसरी तरफ" उपन्यास को उपन्यास तत्वों पर भी जाँचा–परखा है । वातावरण, भाषा और उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य तत्वों से मिश्र सन्तुष्ट नहीं लगते ।

12. <u>ताक–झाँक :</u>

विचित्र शीर्षक है । इस निबन्ध में मिश्र जी ने पूर्ण चन्द्र पूरन्न के अंग्रेजी प्रकाशन की चर्चा की है, पुनः कृष्णा सोबती बहु–आयामी प्रवृत्ति और हास्य–व्यंग्य पूर्णन लेखन पर प्रकाश डाला है । पुनः कृष्ण बलदेव वैद की की लेखन कला को समझाने का प्रयास किया है । निर्मल वर्मा, विष्णु प्रभाकर, अजित कुमार जैसे साहित्यकारों पर की गई टीका टिप्पणी को लेकर मिश्र जी ने आज की वर्तमान दशा और दिशा को जानना चाहा है ।

13. **"जीने की तकलीफ = भारतीय परिवेश" :**

एक संक्षिप्त–सा निबन्ध है जिसमें राजी सेठ के दो कहानी–संग्रहों – "अंधे मोड़ से आगे" तथा "तीसरी हथैली" में संग्रहीत कहानियों की विवेचना है । राजीसेठ को प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण लेखिका माना जाता है । उनके तीन कहानी–संग्रह तथा एक उपन्यास "तत्–सम" प्रकाशित हो चुके हैं ।

थोड़ा लिखकर भी महत्वपूर्ण लिखना राजी सेठ के लेखन की विशेषता है । राजी का जीवन से एकदम सीधा सम्बन्ध एवं सरोकार है । उनके पात्र समाज के वे पात्र हैं जिन्हें 'जीने की तकलीफ" है । उनकी आधार भूत समस्याएँ हैं, उनका परिवेश भी परिचित परिवेश ही है । राजी के पात्र जीवन की समस्याओं के प्रति सचेत हैं । तथा साथ ही गम्भीर भी है । गोविन्द मिश्र राजी सेठ में संवेदना को प्रचुर मात्रा में देखते हैं । उनके ही शब्दों में – राजी सेठ में संवेदना प्रचुर मात्रा में है – वह एक गुण जो विरल होता जा रहा है - लेकिन अक्सर यह कई जलधारा का रूप लेकर समझ की ढलानों पर बने का आतुर दिखती है । संवेदना और समझ का यह गुन्थन जिस संश्लिष्ट किस्म की भाषा में उभरता है – यह राजी के हर दूसरे वाक्य में दिखाई देता है ।"[1]

---

1. साहित्य का सन्दर्भ - ले. गो. मिश्र - पृ. 126

14. **अकेलेपन की रोशनी :**

इस निबन्ध में भी मिश्र ने श्री निर्मल वर्मा के अकेलेपन और उनके लेखन की दिशा का उल्लेख किया है । निर्मल वर्मा के अपने (मिश्र जी के) प्रति किए गए व्यवहार की चर्चा करते हुए उनके आदमी के बुनियादी कष्टों से ही साक्षात्कार करने वाली मानवीय दृष्टि का परिचय दिया गया है । यथार्थ का प्रश्न निर्मल वर्मा के सम्बन्ध में उठाया गया है । यथार्थ की बात को तीन पहलुओं में रखकर स्पष्ट करना चाहा है । निर्मल वर्मा ने कई लेखकों को अपनी समीक्षा का विषम बनाया है । "सम्प्रेषण का संकट" में सम्प्रेषणीयता का प्रश्न उठाया गया है तथा लेख के विविध उद्धरणीय अंशों के द्वारा बात को स्पष्ट किया गया है । "मैं" (अहं) का प्रश्न अकेलेपन को ध्यनित करता है तथा यह लेख का तीसरा प्रश्न है । जो उनका एक मात्र साथी है । यह अकेलापन विविधता . लिए हुए हैं ।

15. **ब्लैक आउट में खोयी हुई आत्मा की तलाश :**

इस निबन्ध के माध्यम से भारत में आपातकाल के दौरान उत्पन्न भयावह स्थिति का उल्लेख करते हुए विपक्ष के विरोध को स्पष्ट किया है । श्री वल्लभ सिद्धार्थ की कहानी "ब्लैक आउट" को आधार बनाकर तानाशाही में पलने वाले छोटे नेता और पुलिस की बर्बरता, निरीहजनों की यातना तथा में की कशमकश और जीनियस की पीड़ा को विरोध रूप में उभारा गया है । इस कहानी में नैतिकता आत्मा, आस्था और ईश्वर की तलाशः की गयी है । वल्लभ सिद्धार्थ का रचना – जगत् अन्य समकालीन साहित्यकारों से कुछ विलक्षण ही प्रतीत होता है । राजनीतिक और सामाजिक विसंगतियों के मध्य खोई हुई आत्मा (मानवता, इन्सानियत) को वह ढूँढना चाहते हैं ।

2. **कथा भूमि (निबन्ध संकलन) :**

सन् 1987 में प्रकाशित यह मिश्र जी का द्वितीय निबन्ध–संकलन है जो कुछ अर्थो

में प्रथम संकलन "साहित्य का सन्दर्भ" से भिन्नता रखता है । प्रथमतया इसमें अतीत से सम्बन्धित निबन्ध है जो व्यक्तिगत भी है जिनमें लेखक मिश्र जी ने अपने उन गाँवों और कस्बों के परिचित वातावरण का स्मरण किया है, जहाँ वह अपने प्रारम्भिक जीवन में रहे थे । "कथा भूमि" में संकलित निबन्धों को उन्होंने "परिचय" "दृष्टिकोण" "प्रतिक्रिया", "स्मरण' और "प्रार्थना" – पाँच खण्डों में विभक्त किया है । इन खण्डों के अन्दर पुनः रचनाक्रम का भी ध्यान रखा गया है ।

"परिचय" खण्ड में समाहित निबन्ध लेखक के बहु परिचित स्थानों, विशेषकर बाँदा में व्यतीत किए गए समय की स्मृतियाँ है, अपने स्वप्न हैं । बुन्देलखण्डी मिट्टी से रचे पचे अपने अन्तरंग क्षणों की स्मृति है, जिसमें लेखक को जीवन को विस्तार से देखने का आधार प्रदान किया गया है । प्रत्येक लेखक, अथवा कवि अपने बाल्यकाल के परिचित परिवेश से जीवन–पर्यन्त शक्ति एवं ऊर्जा ग्रहण करता रहता है । स्मृति–चित्रण साहित्य का सर्वाधिक प्रमाणीभूत प्रमाण होता है, जहाँ स्मृतियाँ और स्मृतियों की ईमानदारी लेखक को अजेमता प्रदान करती हुई उसे कालजयी बना देती है । "कथा–भूमि" के प्रथम खण्ड "परिचय" में समाहित निबन्ध हमें लेखक के उसी संसार की ओर ले जाते हैं । प्रस्तुत है वस्तु–विवेचन –

1. **वह ऋजुता**

प्रथम निबन्ध "वह ऋजुता गोविन्द मिश्र के जीवन के उस खण्ड से शुरू होती है जहाँ सन् 1954 में पन्द्रह वर्ष की आयु में ही जब वह इण्टरमीडिएट में अध्ययन रत थे, अपनी पहली कहानियाँ लिखीं ।

कथा भूमि जैसा लेखन पहले प्यार की पुलक भरा जैसा होता है । लेखक अपने भीतर एक नूतन कथा संवेदनशील आदमी को सिर उठाये देखता है । अपने भीतर वह यह अनुभव करता है कि कुछ है जो बाहर प्रकट होना चाहता है, जो उठ भी रहा है । ऊर्ध्वगामी वह लहर उसे हल्का बनाये दे रही है । एक तरंग व्याप्त बात्सल्य की भावना से

उसे आसपास के दु:ख के साथ क्रमशः एकाकार करती जा रही है । संवेदन शीलता और करूणा उसमें माधुर्य और स्नेह उत्पन्न कर रही हैं । लेखक का यही रूप है जिसके माध्यम से वह एक नयी सृष्टि को जन्म देता है । लेखक को ब्रह्मा के समक्ष बैठाता है जिससे संसार अभिभूत होता हुआ सृष्टि या कि साहित्य के पैदा होने का महोत्सव मनाता है । यही रूप ऐसी रचनाओं को जन्म देता है जिनमें पाठक अपने परिचित संसार को देख पाता हे ।

गोविन्द मिश्र कहते हैं – "रचना के पीछे मनुष्य की अमर होने, अपने को बचाये रखने की आकांक्षा नहीं बल्कि स्वयं को समाप्त कर देने की आकांक्षा ज्यादा रहती है।"[1]

भीतर के जीव को बाहर लाने की आकांक्षा एक माँ के समान, जो शिशु को माध्यम से स्वयं को अजर–अमर करने की भावना से प्रेरित नहीं होती, बल्कि अपने भीतर की घुमड़ती सृष्टि को बाहर लाने के सहज स्वभाव से अनुप्राणित होती है । कठिनाई यही है कि साहित्यकार यह मूल स्वभाव बहुत दिनों तक नहीं रहता । शीघ्र ही लेखकों का एक बड़ा भाग भ्रमजाल में फँस कर अपने समीपवर्ती एक प्रभा मण्डल का निर्माण करने लगता है । यह प्रभा मण्डल उसे जीवन की सत्यता से दूर ले जाने का उपक्रम करता है और क्रमशः लेखक उसमें तिरोहित होता चला जाता है तथा वही भ्रम का भूत लेखक का चेहरा बन जाता है । यह एक ऐसा सवलन होता है जो लेखक की अनुभूति के संसार को नष्ट कर उसकी रचना धर्मिता को मौथरा कर देता है । इसलिए अधिकांश लेखन आज एक शब्दजाल ही प्रतीत होता है । उन शब्दों की देह में आत्मा का निवास ही नहीं है । वह लेखक जो अपने अहं को नष्ट करके इस "मायावी–सृष्टि" के ऐश्वर्य से अपने आपको पृथक् करके जीवन से अपनी रचना धर्मिता को जोड़े रखता है, वह कालजयी साहित्य रचने में समर्थ होता है । कथाभूमि ऐसी ही साहित्यकार की आकांक्षा से अनुप्राणित है । रचना धर्मिता की पवित्रता का यहाँ पग–पग पर अनुभव किया गया है, ऐसा प्रतीत हो रहा है ।

---

1 कथाभूमि – ले० गोविन्द मिश्र – पृ० ।।

2. कथाभूमि – बाँदा :

इस लेख में लेखक गोविन्द मिश्र ने अपनी बाल्यावथा का स्मरण अंकित किया है । झाँसी से मानिकपुर जाने वाली रेलवे लाइन बुन्देलखण्ड के हृदय-स्थल से गुजरती हुई जाती है । अतर्रा, जहाँ मिश्र का जन्म हुआ और चरखारी, जहाँ उनके प्रारम्भिक दस वर्ष व्यतीत हुए, इसी रेलवे लाइन पर आने वाले स्टेशन हैं । मिश्र जी के चार वर्ष बाँदा में भी व्यतीत हुए । इन स्थलों की सहज स्मृति लेखक में आज भी ऊष्मा भर देती है, किन्तु उसे खेद है कि औद्योगीकरण की संस्कृति और जनसंख्या की वृद्धि ने बाँदा का भी दृश्य बदल दिया तथा यहाँ के जनजीवन को प्रभावित किया । मानवीयता, सौहार्द्र और वेनैतिक मूल्य जो व्यक्ति के जीवन का अर्थवत्ता प्रदानकरते थे, धीरे-धीरे तिरोहित होते जा रहे हैं इस लेख में बाँदा का एक सजीव चित्र भी है, जिससे साँस लेते, सोचते, बोलते पात्रों का एक संसार है । अवस्थी धर्मशाला के बगल में गुप्ता जी की दूकान है । प्रातः तीन बजे उठकर स्टेशन जाकर कड़क चाय पीकर नींद दूर भगाने की बजाय चाय पीकर पु:न नींद के आगोश में खो जाने वाला घनश्याम भी है । देवेन्द्र नाथ खरे जैसे समर्पित शिक्षक है । एक जीवन्त-जगत है । सर्दी, कुहासे, गर्मी की चादर ओढ़े हुए मौसम है । गलियों में धूप और धूल के उठते गुब्बारे देखे जा सकते हैं तथा मिट्टी के तेल से जलती ढिबरी (दीपक) की बत्ती से निरन्तर धुँआ है । मीठी खुशबू की तरह सामने खड़ी सौंधी गन्धवाली बाल बिखेरे लड़की है जो चलचित्र की भाँति सामने आती है और फिर स्मृतियों के सागर में डूबती चली जाती है । सम्पूर्ण शहर जैसे लेखक का अपना है । कस्बाई जीवन के ये छोटे-छोटे सुखद महानगरीय सभ्यता में आज तिरोहित होते चले जा रहे हैं । मिश्र जी को यह आधुनिकता कहीं से एक बड़े भ्रम की भाँति दिखती है । आज की बाँदा भूमि उन्हें उदास लगती है ।

3. मेरी रचना प्रक्रिया :

लेखक अपने दैनिक जीवन की बैचेनी से बेचैन है, चारों ओर वेदना है और लेखक

उससे बचकर भागना चाहता है नैतिक, बुद्धि विचार आदि उसे मथ रहे हैं और वह उस सबसे मुक्ति पाना चाहता है । वह समाज को निरापद और मानवता से पूर्ण देखना चाहता है । फलतः वह कागज–कलम उठाकर लिखना शुरू कर देता है । पर बीच में ही यातनाओं के पाश को चारों ओर फैलता देखा वह लिखना छोड़ देता है । यातना उसे बहुत ही चुभती है। लगातार ढोयी जाने वाली वेदना किसी क्षण अवचेतन में रोशनी भर देती है और विशिप्ति संवरती दिखती है । वेदना को कोई अर्थ मिल जाता है । लेख़क स्वयं को इस यातनामय, वेदनापूर्ण जगत में श्री हीन पाता है तथा तटस्थ बनकर इस संसार को देखता रहता है । केवल लेखन काल में ही जीवन सार्थक प्रतीत होता है वरना निरर्थक है ।

4. **अपने पात्रों के बीच** :

इस लेख में लेखक मिश्र जी की मानसिक बनावट और संस्कारों का एक सजीव चित्रण है । लेखक अपनी नानी के माध्यम से संघर्ष शील पुरानी पीढ़ी का स्मरण करता है । रोजी–रोटी के लिए किए जा रहे संघर्ष और वह भी बिना शालीनता खोये, यह जीवन का एक नया रूप ही हमारे समक्ष रखता है ।

5. **मेरे सपने** :

मनुष्य का जीवन ही एक स्वप्न है, संसार एक स्वप्न है, स्वप्न आते हैं और चले जाते हैं । स्वप्न जगत बड़ा ही जीवन्त लगता है । स्वप्न में लेखक एक उपन्यास लिख रहा है किन्तु जागने पर कुछ भी तो नहीं । स्वप्न तो अर्द्ध–मुर्च्छित सी अवस्था में भी आते हैं, कुछ दिवा स्वप्न भी होते हैं । कोई स्वप्न सोकर भी हो उठता है, जैसे जर्मनी की यात्रा । स्वप्न कितने ही मधुर क्यों न हो, परन्तु चिन्ता जगत उन्हें कटु बना देता है ।

द्वितीय खण्ड (दृष्टिकोण) :

कथाभूमि के द्वितीय खण्ड "दृष्टिकोण" का धरातल प्रथम खण्ड "परिचय" से पर्याप्त भिन्नता रखता है । इस खण्ड में "समकालीन अलोचना तथा "सारिका कथा प्रतियोगिता – प्रसंग" – एक, दो, तीन, चार (जिसमें मिश्र जी 'सारिका" पत्रिका द्वारा आयोजित कथा–प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल के सदस्य रहे हैं) पर व्यक्त किए गए विचार हैं । इसी खण्ड में बुन्देली के महाकवि ईसुरी, कवि वीरेन्द्र मिश्र, राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त और कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानियों की चर्चा है । यह खण्ड इस कारण महत्वपूर्ण और उपयोगी है, क्योंकि इसमें लेखक ने समकालीन आलोचना एवं आज लिखी जा रही नवोदित कहानीकारों की कहानियों के परिवेश, स्वर और केन्द्र बिन्दुओं पर अपने स्पष्ट विचार व्यक्त किए हैं ।

गोविन्द मिश्र के अनुसार आज के अधिकांश हिन्दी लेखक कुण्ठाग्रस्त हैं । वे अपनी पारस्परिक उखाड़–पछाड़ में अधिक एवं रचना धर्मिता की ईमानदार को यथावत् स्थित रखने में कम संलग्न हैं । उनकी एक दृष्टि लेखन पर रहती है तो दूसरी दृष्टि याचना भरी होती है जो उन सरकारी प्रतिष्ठानों या उनसे जुड़े शक्ति–केन्द्र बने अधिकारियों की ओर लगी रहती है । यही कारण है कि आज का लेखक भाषागत संस्कार एवं परिष्कार करता नहीं दिखाई देता, अपितु, प्रचलित फैशन की तरह प्रयोग में आने वाले शब्दों का ही प्रयोग करता दिखाई देता है । वह व्यर्थ का परिश्रम ही करना चाहता । उसका उद्देश्य हमेशा प्रकाशित होते रहते अपने लेखन को देखना होता है । आज जो आलोचक हैं, उनमें कई यह मानते हैं कि परम्परा, धर्म और संस्कृति से परहेज करना चाहिए । उनके लिए इस तरह की रचनाओं के आकलन की एक ही कसौटी है कि रचना के मूल में पहुँचे बिना ही लेखक को परम्परावादी कहकर हाथ झाड़ लेना । ऐसे आलोचक कम ही है जो पूर्वाग्रहों से मुकत रहकर रचना का अध्ययन करें और अपने निष्कर्ष दें । वे यह भूल जाते हैं कि जिस पाश्चात्य साहित्य को ये आलोचक अपना मापदण्ड बनाते है उसी पश्चिम का समस्त उच्च

स्तरीय साहित्य परम्परा और सांस्कृतिक प्रवाह के द्वन्द्व की उपज है । किसी भी देश का साहित्य अपनी सांस्कृतिक धारा में हटकर आधार विहीन हो जायेगा ।

निबन्धों का कथासार इस प्रकार है :

6. "आलोचना नहीं समकालीन आलोचना के विरूद्ध :

लेखक समवेत रूप से समीक्षक और सृष्टिकर्ता (रचनाकार) दोनों ही होता है । वह समकालीन साहित्यकारों के साहितय की समीक्षा भी करता है । किन्तु मिश्र जी को आज का हिन्दी लेखक कुण्ठाग्रस्त दिखाई देता है । कारण है कि उनकी एक दृष्टि लिखने पर रहती है तो दूसरी दृष्टि याचना भरी सरकारी अधिकारियों पर, जिनमें अधिकांश या हर तीसरा लेखक अफसर, इन्जीनियर या डाक्टर होता है । वह अपनी सुख–सुविधा को महत्व देता है। हिन्दी आलोचक कुण्ठा हीन–भावना, ग्रन्थियाँ, घोर अहंवाद, अहंकार आदि से घिरा रहता है । इससे भी बढ़कर कुण्ठा होती है असफलता की । स्वस्थ आलोचना एक विशेष युग में लेखन की दिशा को रेखांकित करने के साथ–साथ उसे उत्साहित भी करती है । डॉ राम चन्द्र शुक्ल, पं. चन्द्रधर शर्मा "गुलेरी" इस कुण्ठा से मुक्त हैं । मिश्र जी कुण्ठा के तीन कुप्रभावों की ओर संकेत करता है –

1. यह भ्रम फैलाया गया है कि कम लिखना गुण है । तात्पर्य है कि लेखक को "गागर में सागर" भरने वाला होना चाहिए । यह भी स्पष्ट है कि लेखन स्तरीय और सीमित होना चाहिए ।

2. साहित्य आज आधुनिकता और प्रगति शीलता को मिलाकर चल रहा है और जो कुछ लिखा जा रहा है वह नैराश्य को ही जन्म देता है ।

3. भारतीय परम्परा को कुछ लोग प्रतिक्रियावादी घोषित कर रहे हैं जो अनुचित है ।

अन्त में लेखक को आशा रूपी किरणें दिखाई देती है ।

7. **सारिका कथा–प्रतियोगिता प्रसंग – 1 = कहने को कितना कुछ :**

इस लेख में नये साहित्यकारों सद्यः संवेदनशीलता को उत्सुकतापूर्ण माना गया है । फिर भी वर्तमान कहानियों में घटनाओं, उनके मूल विवरणों के मोह से बचने का प्रयास कम लेखकों ने ही किया है । आज की कहानियों पर सिनेमा का प्रभाव दीखता है । कलात्मकता क नाम पर रसात्मक सौन्दर्य से नकारा नहीं जा सकता । साहित्य जीवन, विचार और भावनाओं का कलात्मक गुंफन है । (अप्रैल – 83)

कथा–प्रतियोगिता – 2 = स्पष्ट–सी रेखा ही :

इस प्रतियोगिता में शामिल 50% कहानियाँ ग्रामीण वातावरण पर आधारित थीं जिनमें किसानों की ऋण ग्रस्तता अथवा कोरी कल्पना का बोल वाला था । लेखक "रोमाण्टिक" तत्वों का कायल है, जो उसे उन कहानियों में नहीं मिला । पुनः "व्यावसायिता" शब्द की समीक्षा करने पर भी देखा तो उन कहानियों में मनोरंजनात्मक अर्थ में व्यावसायिकता नहीं दृष्टिगत हुई । केवल जीवन, मृत्यु, मन्त्रणा आदि को विषय बनाया गया था । (अप्रैल–84)

कथा–प्रतियोगिता – 3 = "अगर आस्था बचायी जा सकी तो" :

इस प्रतियोगिता में शामिल कहानियों में मिश्र जी सर्जनात्मकता तलाशते हैं, किन्तु हाथ लगती है आर्थिक संकट की विकटता । जैसे "शरीफ लोग" में ढेमन चमार, "सिघाड़े की बेलि" में डुल्लो, "तलाश" में मास्टर जी और "विकलांग" में रहीम चाचा की आर्थिक पीड़ा इस यथार्थ के साथ–साथ इन कहानियों में कुछ संवेदनशीलता भी मिली । (जून – 85)

कथा प्रतियोगिता – 4 = निरन्तर जलना :

इस प्रतियोगिता में प्रेषित कहानियों में सिर्फ विस्तार और पुरानापन ही देखने को मिला । हर तीसरी कहानी में विरोध, संघर्ष, हिंसा, नारेबाजी या वर्ग – संघर्ष का वर्णन ही था । कुछ भाषागत वैविध्य भी दृष्टिगत हुआ । (फरवरी – 87)

8. **बुन्देली के महाकवि ईसुरी :**

इस संक्षिप्त लेख में मिश्र जी ने महाकवि ईसुरी के काव्य–गीतो की उद्धरणात्मक पंक्तियों के माध्यम से उनका स्मरण किया है । एक निरक्षर कवि की कविता में साहित्य गौरव था जो जन–जीवन से जुड़ा हुआ था । कवि के गीतों से ही मिश्र जी उनका साहित्यिक परिचय प्राप्त करते हैं ।

9. **पीपल के पत्तों में बजती हवा :**

निबन्ध का प्रारम्भ रेलयात्रा के दौरान बर्थ पर सोयी हुई सुन्दरी युवती के दर्शन से होता है जिसका सौन्दर्य कवि वीरेन्द्र मिश्र की पंक्तियों का स्मरण करा देता है । फलतः कालान्तर में मिश्र जी बम्बई महानगर में सन् 82 में उनसे मिलते हैं । विभिन्न कवि सम्मेलनों में लेखक बच्चन, श्याम नारायण पाण्डेय, शुभ नाथ सिंह, रमानाथ अवस्थी, वीरेन्द्र मिश्र, नीरज, दुष्यन्त कुमार आदि को सुनता है । वीरेन्द्र मिश्र तक वह उनके गीतों के माध्यम से ही पहुँचता है और कविता के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्त्व पाता है । बम्बई की चकाचौंध से दूर रहने वाले कवि वीरेन्द्र मिश्र की कविता में उदान्तता, सन्तुष्टि और गरिमा लेखक को दृष्टिगोचर होती है तथा उनकी संगीत लहरी का नाइ ऐसे बजता है जैसे पीपल के पत्तों के बीच हवा गुजर रही हो ।

10. **"जन तान्त्रिक कवि – मैथिली शरण गुप्त" :**

इस लेख में गोविन्द मिश्र ने राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त के दो प्रमुख काव्य युगों पर संक्षिप्त टिप्पणी व्यक्त की है । प्रथम तो उन्होंने बुन्देली भाषा की काव्य – परम्परा के प्रति श्रद्धा रखते हुए खड़ी बोली को अपनी काव्य भाषा के रूप में चुना तथा काव्य रचना के माध्यम से खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की । खड़ी बोली को प्रथमतः काव्य भाषा बन सकने की सामर्थ्यवान भाषा के रूप में भी माना जाना कठिन लगा

रहा था, क्योंकि कोमल भावों को व्यक्त करने की क्षमता खड़ी बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा और अवधी में कहीं अधिक थी तथा उन्हें काव्यभाषा के रूप में भी मान्यता प्राप्त हो चुकी थी । स्वर्गीय गुप्त जी ने केवल खड़ी बोली को ही काव्यभाषा के रूप में चुना ही नहीं, अपितु मधुर भावों की व्यंजना भी उसके माध्यम से की जा सकती है, यह भी अपने ग्रन्थों के माध्यम से सिद्ध किया । दूसरी ओर बुन्देलखण्डी के ओज और शक्ति का लाभ उठाने के लिए उन्होंने सरलता से भाव प्रकट करने की प्राथमिकता भी दी । अपने जीवन की सहजता को उन्होंने काव्य की सहजता के साथ जोड़ कर व्यक्ति एवं कृति में सामंजस्य उत्पन्न किया । जीवन भर के यश और पुरस्कार के राजपथ से दूर रहकर कंटका कीर्ण जनपथ पर चलने को तरजीह देते रहे । यही कारण है कि जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते जाते हैं, स्वर्गीय गुप्त जी के काव्य का अध्ययन और पठन उतना ही सारपूर्ण होता जा रहा है ।

इस खण्ड का अन्तिम लेख कवीन्द्र गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानियों के विस्तार को समझाने का एक प्रयत्न प्रतीत होता है ।

11. कलात्मक छल से दूर – टैगोर की कहानियाँ :

"गीतांजलि" का रचनाकार कहानीकार भी हो सकता है, से मिश्र जी ने लेख का शुभारम्भ किया है । अपनी पारिवारिक सम्पत्ति की देखभाल करते समय रवीन्द्र नाथ को जो बाह्‌य जगत् से साक्षात्कार हुआ, उसी के प्रभाव से कहानियाँ लिखने की प्रेरणा मिली । रवीन्द्र की कहानियों का स्थूल परिवेश यद्यपि सीमित है, किन्तु पृष्ठभूमि विस्तृत है । "पोस्ट मास्टर" की रतना और काबुली वाला पात्रों से अपने मत की पुष्टि करते हैं । "एक रात" कहानी से आधुनिकता का बोध होता है । "पत्नी का पत्र" आधुनिकता लिए कहानी है । अस्तु, सब कुछ मिलाकर रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानियों के आज के मानदण्डों पर मापना अनुचित ही होगा वे कहानियाँ तो छल से सर्वथा दूर हैं ।

'प्रतिक्रिया" नाम तृतीय खण्ड में उनके समकालीन बृहद् परिवेश पर लेखक मिश्र जी की प्रतिक्रियाएँ हैं । इसमें "इंग्लैण्ड में भारतीयों की स्थिति" "हृदय फिर जाग उठे", बुद्धि की यह जहरीली गैस एवं महाविनाश के घरे में आदमी एवं ये चार लेख हैं । अन्तिम दो लेख एक स्वर में लिखे हुए हैं । पहले में भोपाल गैस-त्रासदी का परिप्रेक्ष्य है, तो दूसरे में मनुष्य के आसन्न महाविनाश का । भोपाल की त्रासदी ने न केवल भारत वरन् विश्व के प्रत्येक देश के बुद्धिजीवियों के मनो-मस्तिष्क को भी झकझोर दिया थं और रूस के चेर्नोबिल परमाणु संयत्र में हुई दुर्घटना ने मानव जगत के समक्ष यह स्पष्अ कर दिया कि एक विकसित देश में भी इस तरह की दुर्घटना ने मानव जगत के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया कि एक विकसित देश में भी इस तरह की दुर्घटनाओं से बचा नहीं जा सकता । आज मनुष्य प्रतिस्पर्धा की जिस अन्धी दौड़ में सम्मिलित हो रहा है, वह भविष्य में कब हमें विनाश के अँधेरे तल में जा पटकेगी - कुछ कहा नहीं जा सकता । पृथ्वी के ऊपर वायु मण्डल में फैले ओ जोन गैस का घेरा पृथ्वी पर मानव-जीवन बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु हमारी प्रगति इस घेरे में ही सूराख करती जा रही है ।

"महाविनाश के घेरे में आदमी" लेख में लेखक की चिन्ता आज की स्थितियों में आदमी को बचाए रखने की है । ये दोनों ही लेख इस बात के प्रमाण हैं कि आज का संवेदनशील लेखक केवल अपने संकीर्ण भाव जगत में नहीं विचरता । अतः गोविन्द मिश्र की दृष्टि से दूरदर्शी लेखक की भाँति ही दूरगामिनी है ।

"इंग्लैण्ड में भारतीयों की स्थिति" निबन्ध में लेखक ने अपने इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान वहाँ रह रहे भारतीयों की जो स्थिति देखी उसका वर्णन किया गया है । इग्लैण्ड आकर बसने वाले भारतीयों का उद्देश्य पैसा कमाना और बचाना है । जीवन पर्यन्त रहने की इच्छा वाले भारतीय कम ही मिलेंगे । यहाँ भारतीयों मे असुरक्षा की भावना अधिक देखने को मिलती है । वहाँ भारतीयों को शंकाकुल दृष्टि से देखा जाता है । साउथ हाल में मिले भारतीय स्वयं को भारत से अच्छा सिद्ध करते हैं । सीमित जीवन के बावजूद वे

क्रय–विक्रय काफी करते हैं । यहाँ रहने वाले भारतीयों का रहन–सहन का स्तर उम्दा होता है तथा आकर्षण का कारण भी होता है । स्थायी रूप से बसने की इच्छा वाले भंरतीयों से अंग्रेजों को ईर्ष्या होती है, क्योंकि वे प्रवासी या यात्रा पर आये प्रत्येक भारतीय से पूछते हैं कि आप क्यों और किस लिए आये हैं तथं कब तक रहेंगे । अधिकतर कष्ट तो लन्दन, मैनचेस्टर और बर्मिंघम के औद्योगिक क्षेत्र में रहने पर होता है । वेल्स और स्काटलैण्ड में अविश्वासनीय स्नेह दिखाई दिया । कुल मिलाकर लेखक को इंग्लैण्ड में रहने वाले भारतीयों की ही दयनीय स्थिति देखने को मिली

हृदय फिर जाग उठे :

इस निबन्ध में नारी–शोषण का उल्लेख करते हुए एक लघु कथा के दृष्टान्त द्वारा अपने मत का समर्थन किया है । इस शोषण का सामना या उच्छेदन करना स्त्री–शक्ति को खड़ा करने से नहीं किया जा सकता अपितु पुरूष हृदय को जगाने अर्थात् उसके मस्तिष्क में नारी के प्रति सम्मान की भावना लगाने से सम्भव है । यही नारी–शोषण का उचित समाधान है ।

"कथा–भूमि" का अगला खण्ड "स्मरण" संज्ञा वाला है, जिस में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्ययन के काल खण्ड में अपने गुरूओं के प्रति भावना का स्पष्टीकरण एवं प्रकटीकरण इलाहाबाद एक, दो, तीन, चार शीर्षक में समाहित लेखों के माध्यम से किया है । आज के विश्वविद्यालयों की स्थिति किसी से छिपी नहीं है, किन्तु साठ के दशक तक स्थिति सुखकर थी । मूर्धन्य विद्वानों से विश्वविद्यालय की पहचान बनती थी ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय हमेशा से विद्वानों का गढ़ रहा है । श्री मिश्र ने आंग्ल साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि इसी विश्वविद्यालय से ली है । यही कारण है कि उन्होंने अंग्रेजी भाषा के महान विद्वान शिक्षक प्रो. देव तथा उद्‌भव विद्वान डॉ. फिराक को श्रद्धांजलि अर्पित की है तथा साठ के दशक के शिक्षा–जगत की स्मृति को तरोताजा बना दिया है ।

हलाहाबाद – (1)

प्रोफेसर देव का दबदबा :

प्रयाग (इलाहाबाद) विश्वविद्यालय बौद्धिक एवं शैक्षिक स्तर की दृष्टि से सदा श्रेष्ठ और प्रसिद्ध रहा है । अंग्रेजी के विद्वानं प्रो. देव मिभागाध्यक्ष और मिश्र जी के गुरू थे । प्रो. देव गम्भीर और एक आदर्श शिक्षक थे । लड़कियों की रंग–बिरंगी चटकीली ड्रेसा (परिधान) उन्हें पसन्द नहीं था । विश्वविद्यालय में उनका दबदबा था, महत्व था, प्रसिद्धि तथा सम्मान था । वे रक्तचाप के रोगी भी थी, फिर भी कक्षा में नियमित अध्यापन करना उनका स्वभाव था । वे दूसरे प्रोफेसर की कक्षा भी ले लिया करते थे । "यूनीवर्सिटी" शब्द का वे व्यापक अर्थ लगाते थे अर्थात् यूनीवर्सल.... अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति की कल्पना । न कि आई.ए.एस. और पी.सी.एस. अधिकारी बनाने की फैक्ट्री । हड़ताली छात्र तक उनका भय मानते थे । प्रो. देव के इस दबदबे के पीछे उनकी नैतिक शक्ति भी एक महत्वपूर्ण कारण थी ।

इलाहाबाद – (6)

"होली – भीतर बाहर" :

यह मनोरंजक लेख है जिसमें होली के लिए होने वाली रंग भरी रंगीली होली का उल्लेख है । परीक्षा के दिनों में होली के हुड़दंग से बचने वाला परीक्षार्थी अन्ततः रंगीली होली का शिकार हो ही जाता है । प्यार भरी में सरोबार ।

इलाहाबाद – (3)

फिराक.... अपनी लकीर पर होने का साहस :

फिराक गोरखपुरी.... एक शायर, तेज तर्रार व्यक्तित्व । प्रत्येक लड़के की

जुवान पर फिराक साहब की गजल या शायरी की पंक्तियाँ दिखाई देती थी । उनसे अकेले में मिलना खतरनाक था । लेखक ने फिराक साहब की कुछ निन्दनीय आदतों का जिक्र किया है, किन्तु उनकी जीवनी–शक्ति अद्‌भुत थी । वे हिन्दी के प्रबल विरोधी माने जाते थे ।

इलाहाबाद – (2)

किन्तु उड़ान में पेटी बाँधे रहना ही उचित है :

एक व्यंग्यात्मक निबन्ध है । होली के दिन, हरीश मित्र से भेंट, कि तभी ठाकुर साहब का दो मंजिल से कूदने की धमकी का ऐलान । लेखक धीरे–धीरे छत पर ठाकुर साहब के पास पहुँचा कि मीठी–मीठी बातों से वातावरण ही बदल गया । ठाकुर साहब भंग चिलम, शराब और विहस्की के नशे में चूर अब मुर्गा की इच्छा । अन्त में, ठाकुर साहब का मनमौजी स्वभाव निबनध को कहानी का रूप देकर समाप्त हो जाता है ।

"भवानी प्रसाद मिश्र – पंछी की उड़ान" लेख में मिश्र जी ने कवि भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व की सहजता तथा उसमें उत्पन्न उनके काव्य की सहज प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है । भवानी भाई कवियों की उस पीढ़ी के प्रतिनिधि कवि थे, जिनका जीवन ही कविता थी । एक गहरी तल्लीनता तथा बाहर से दिखती उदासीनता के भीतर चलते रहते विचारों का ज्वार का नाम ही भवानी भाई । उनकी मृत्यु नरसिंहपुर में हुई तथा मृत्यु के कुछ क्षणों पहले तक उन्होंने वह तल्लीनता नहीं खोई । वे निरन्तर अर्थवान् शब्दों की खोज में लगे रहे । अपने कस्बाई परिवेश से उन्हें दिल्ली जैसे महानगर में रहकर भी स्नेह बना रहा । परिचित व्यक्ति कितने ही अन्तराल के बाद उन्हें मिला हो । कभी भी उनसे यह अनुभव नहीं किया कि समय के इस अन्तराल ने उनके घुमड़ते प्यार में कहीं से भी उत्पन्न की हो । प्रस्तुत लेख स्वर्गीय भवानी भाई के प्रति व्यक्त एक भाव भीनी श्रद्धांजलि है तथा पठनीय है । गोविन्द मिश्र के रचना–जगत में कविता के प्रति उदासीनता नहीं है । अन्तिम लेख "सप्तर्षि का वह आलोक आत्म–कथात्म निबन्ध है । यह 1959 में मिश्र द्वारा किए

गए जीवन–संघर्ष का एक दस्तावेज भी है । जब वे अपनी जन्मभूमि अन्तर्रा के डिग्री वालों में अस्थायी रूप से अंग्रेजी- भाषा का अध्यापन कर रहे थे । साथ ही साथ वे कम्पटीशन की तैयारी में भी संलग्न थे । एक परिचित और प्रेममय वातावरण को समेटे यह लेख कस्बाई निश्छलता को प्रकट करता है एवं इस रूप में पठनीय है कि परिचति वातावरण का प्रभाव भी मिश्र के मस्तिष्क में उसी सूक्ष्मता के साथ ताजा है एवं वर्तमान में भी वे उस वातावरण की स्मृति की सुगन्ध को अपने भीतर संजोए हुए हैं ।

"कथा–भूमि" का अन्तिम खण्ड "प्रार्थना" शीर्षक से है, जिसमें "इन दिनों" के नाम से तीन पृष्ठीय केवल एक लेख है । लेखक ने ईमानदारी से आज के समाज में बढ़ती भाव हीनता और मानव नियातिकी चर्चा की है । इस बढ़ती आपाधापी स्वार्थी–प्रवृत्ति और प्रतिस्पर्धा के युग में लगता है, सभी कोई एक निरूद्‌देश्य एवं लक्ष्यहीन दौड़ में सम्मिलित है । मात्र भागने के लिए भागना और उसमें भी प्रथम आने की प्रतियोगिता लगता है काम की अभिव्यक्ति है कि मानव आज सिसिफस की तरह निरूद्‌देश्य अंधेरे में एक पाषाण खण्ड को पर्वत शिखर तक ले जाकर उसे पुनः लुढ़काकर और इस तरह बारम्बार उसे ढोने के लिए विवश है – यही मानव–नियति है, एक उद्‌देश्य हीनता की स्थिति में अधिक प्रभावी समझ में आने लगा है और मिश्र जी का साहित्य जैसे भीड़ में से झाँकता एवं परिचित चेहरा है ।

इस प्रकार "कथा–भूमि" की वस्तु 23 छोटे बड़े निबन्धों के रूप में प्रस्तुत है ।

विशेषता :

श्री गोविन्द मिश्र के लेखक–वैशिष्ट्य की ओर संकेत करते हुए श्री गणेश शुकल ने लिखा है कि "समाज में विखण्डन और सांस्कृतिक ह्रास की स्थिति में सम्भवतया सबसे पहले जिस दुखती रग पर हाथ रखा जाता है वह साहित्य होता है वे रचना धर्मी जो लेखक में एक नैरन्तर्य बनाये रखते हैं तथा लेखन का उद्‌देश्य कहीं अपने भीतर बहती परम्परा और संस्कृति की धारा का पोषण मानते हैं उनका लेखन से लगाव गहरा होता है । वे लेखन को

एक व्यवसाय या यश प्राप्ति का साधन न मानकर समर्पण–भाव से लेखन करते हैं । हिन्दी के उन बिरले लेखकों में सहज ही मानस पर श्री गोविन्द मिश्र का नाम उभर आता है । पिछले 30 (–32) वर्षों से लेखन से गहराई से जुड़े मिश्र जी ने "लाल–पीली जमीन" जैसे यशस्वी उपन्यास से लेकर सद्यः प्रकाशित उपन्यास "धीर–समीरे" तक छः उपन्यास, लगभग सत्तर (अब तक 100) कहानियाँ, यात्रावृतत, निबन्ध–संग्रह आदि के रूप में करीब अढ़ाई दर्जन ग्रन्थ हिन्दी पाठकों को दिए हैं ।[1]

इस कथन से सार निकलता है कि गोविन्द मिश्र लेखन की दृष्टि से व्यवसायी नहीं है, न ही यश–प्राप्ति उनका उद्देश्य है, वे तो समर्पण–भाव से लिख रहे हैं । उनके लेखन में एक पीड़ा है, वेदना है, आज के गिरते नैतिक मूल्यों के प्रति छटपटाहट है और श्रद्धालुओं के प्रति श्रद्धा है तो बढ़ती अमानवीयता के प्रतिविकलता भी है । वे अपने निबन्धों के द्वारा आज के साहित्य और साहित्यकारों की दशा–दुर्दशा और दिशा का आकलन करना चाहते हैं । साहित्य के गिरते बदलते स्तर से भी वे उद्विग्न हैं अतः यथार्थ का चित्रण करने से वे नहीं चूकते । यही उनकी चिन्ता का विषय है तो ये ही विशेषताएँ हैं और ये ही निबन्ध गत–समस्याएँ । प्रसंगानुसार निबन्धों में प्राप्त विशेषताओं का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

गोविन्द मिश्र के दोनों निबन्ध–संग्रह साहित्य के यक्ष प्रश्नों से सीधे–सीधे जुड़ी चिन्ता से सम्बन्धित निबन्धों के संग्रह हैं जिनकी अन्विति सांस्कृतिक ह्रास से उत्पन्न एक रचनाकार की चिन्ता है गोविन्द मिश्र के साहित्य में पुनः पुनः उपस्थित होने वाले बिन्दु हैं – मानवीयता और परम्परा । "साहित्य का सन्दर्भ" भी लेखक की इसी चिन्तन से हमें अवगत कराता है । "कथा- भूमि" ग्रन्थ में अतीत से सम्बन्धित व्यक्तिगत निबन्ध है । दोनों ही निबन्ध–संगहों के लेखक में अन्तर है, वैविध्य है । मिश्र जी के निबन्ध संग्रहों की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार बतायी जा सकती हैं -

---

1. भीड़ ये झांगता चेहरा–गोविन्द मिश्र के निबन्ध – गणेश शुक्ल (गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम : पृष्ठ 299 से)

1. **औद्योगिक एवं महाजनी संस्कृति के प्रति चिन्ता :**

"साहित्य का सन्दर्भ" निबन्ध-संग्रह के प्रथम निबन्ध "लेखन और समाज-परिवर्तन" में लेखक की चिन्ता का मुख्य बिन्दु है – "औद्योगिक और महाजनी. संस्कृति" जिसके प्रदूषण को लेकर प्रत्येक रचनाधर्मी चिन्तित है । उपभोक्ता ; संस्कृति ने सुरसा के मुँह की भाँति हमें फँसा रखा है तथा हम उसके मुँह में खड़े ऊपर-नीचे के नुकीले दाँतों के बीच पिसे जाने की यन्त्रणा के संक्रमण-काल में असहाय-से अनुभव करने लगे हैं । आज उपभोक्ता संस्कृति से लेखन का मूल बिन्दु दलगत एवं लिखी निश्चित विचारधारा के पृष्ठ पोषण से समाहित होने से संकुचित बन गया है ।

2. **समकालीन लेखन से असन्तोष :**

श्री गोविन्द मिश्र का समकालीन लेखन से असन्तोष स्पष्टतया उभरकर सामने आता है । उनकी स्पष्ट मान्यता है कि वर्तमान लेखन अपेक्षित साहित्यिक सम्बल प्रदान नहीं कर पा रहा है । वर्तमान साहित्य शाश्वत के स्तर को छोड़ तात्कालिक स्वर को प्रमुखता दे रहा है । यही कारण है कि वर्तमान लेखन जीवन के कुरूप पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित कर रहा है ।

3. **पूर्ववर्ती साहित्य की उपेक्षा :**

लेखक की दृष्टि में उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचन्द, कहानीकार जैनेन्द्र, यशपाल, राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, कवीन्द्र रवीन्द्र देव जैसे प्रसिद्ध और प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकारों ने साहित्य को जो अद्भुत देव और योगदान देकर मार्ग प्रशस्त किया है, उसके हम चिर ऋणी हैं, उनसे आज के साहित्य को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, किन्तु आज हम बौने होते जा रहे हैं तथा प्रसिद्ध और अर्थ की ओर लालायित होकर दौड़ रहे हैं । साहित्य के मूल उद्देश्य से विमुख होकर हमारा उद्देश्य सुख-सुविधा प्राप्त करना रह गया है ।

4. **परिवेश और वैयक्तिकता के मूल बिन्दू :**

वर्तमान काल में लिखी जा रही कहानियों पर मिश्र जी के विचार कुछ गम्भीर साहित्यिक प्रश्नों को उठाते हैं यथा परिवेश और वैयक्तिकता के मूल बिन्दु । "आज की कहानी एक सर्वेक्षण" समकालीन मानसिकता तथा उससे उठते प्रश्नों की ओर जाने का मिश्र जी का आग्रह एक सजग लेखक की चिन्ता को प्रमाणित करता है । नये लेखकों में विगत 30 वर्षो से जो एक चिन्ता हीन और वर्जनाहीन मुद्रा का निर्माण हुआ है, उसके समकक्ष एक शान्त निर्विवादित और लेखन कार्य में संलग्न लेखक की चिन्ता हमें अपनी प्रमाणिकता से बॉधती है । वस्तुतः यह चिन्ता तो सभी ईमानदार रचना धर्मियों की चिन्ता होनी चाहिए ।

5. **साम्यवादी व्यवस्था के प्रति खीझ :**

साम्यवादी व्यवस्था के तंग घेरे में लिखे जा रहे साहित्य के पीछे को मानसिकता के प्रति खीझ "समकालीन कथा साहित्य और आज का आदमी" लेख में स्पष्ट प्रतीत होती है । यहॉं यथार्थ के प्रति उत्पन्न आग्रह के पीछे छिपे कारणों की भी समीक्षात्मक विवेचना की गई है । मिश्र जी का यह निश्चित विश्वास है कि साहित्य किसी भी तरह समाज से कटी हुई चीज बनकर नहीं रह सकता ।

6. **साहित्यिक गुटबाजी का परिणाम :**

साहित्य के क्षेत्र में उत्पन्न विवाद मान्यताओं पर उत्पन्न खेमेबाजी अवश्य एक उलझी साहित्यिक राजनैतिक स्थिति का निर्माण करती हैं, जहॉं आम आदमी भी लुप्त–सा हो जाता है, वह खो जाता है । आम आदमी की चिन्ता ही गोविन्द मिश्र की चिन्ता है, समस्या है । मानवीय मूल्यों को सुरक्षित रखना आज की आवश्यकता है तथा इन मूल्यों की खोज ही रचनाधर्मिता का स्वर मुख्य होना चाहिए ।

7. **उपन्यास के क्षेत्र में रचना–संसार का सिकुड़ना :**

हिन्दी उपन्यास जातीय सम्भावनाएँ निबन्ध में लेखक ने यथार्थ वाद के नाम पर रचना संसार के निरन्तर छोटे होते जाने पर उपन्यासगत समस्या व्यक्त की है । यह प्रासंगिक है । गोविन्द जी का मानना है कि प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी उपन्यास पूर्णतया दब गया है तथा लघु उपन्यास, उपन्यासिका जैसे नये शब्दों का गठन होने लगा है ।

8. **सतर्कता एवं धैर्य का अभाव :**

उपन्यास–लेखन के क्षेत्र में ऐसा लगता है कि लेखकों के पास उपन्यास लिखने हेतु पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के समान न वैसी सर्तकता है और न ही वह धैर्य: प्रात: आज के व्यस्ततक वातावरण में अपने अन्दर धैर्य धारण करने की क्षमता लेखक मे दिखाई नहीं देती है, क्योंकि समाज बहु–आयामी है और उसकी भी अनेक समस्याएँ हैं । बहु कोणीय सामाजिक यथार्थ को उसके पूरे पन के साथ उठा पाने की ताकत का अभाव एक मुख्य कारण है । फलत: लेखक समग्र यथार्थ को खण्डश: विभक्त कर एक खण्ड को अपने लेखक का विषय बनाता है और उसे नाम दे देता है – लघु उपन्यास या उपन्यासिका ।

9. **विभिन्न उपन्यासकारों एवं कहानीकारों पर समीक्षा :**

गोविन्द मिश्र ने "साहित्य का सन्दर्भ" निबन्ध संकलन में भीष्म साहनी, निर्मला वर्मा, महेन्द्र भल्ला, कृष्णा सोबती और राजी सेठ के उपन्यासों और कहानी–संग्रहों के माध्यम से इन लेखकों–लेखिकाओं की रचनाधर्मिता पर उपयोगी, महत्वपूर्ण आवश्यक एवं प्रासंगिक बातें की हैं । इन लेखकों की रचनाओं में मिश्र जी को फैलाब और पसराव", "कथा की विशालता", "गठन और सघनता का अभाव", "एकान्विति का अभाव", 'सूत्रवद्धता का अभाव" दृष्टिगोचर होता है तो राजनैतिक लाभ एवं सोच भी स्पष्ट झलकता है । कहीं "भोगे हुए यथार्थ के अनुभव सीमाएँ पैदा करते हैं तो कहीं समाज में जीने की तकलीफ उठती

दिखाई देती है । संवेदना प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होती है । कहीं मिश्र जी को लेखक का होना आज के गुण में बहुत ही खलता है, पीड़ा देता है, तो कहीं वह अकेलेपन से चिन्तित है तो कहीं ब्लैक आउट के समय में खोयी हुई आत्मा की तलाश करता फिरता नजर आता है।

10. **कथा–भूमि बीते समय का स्मरण :**

"कथा–भूमि" मिश्र जी का द्वितीय निबन्ध–संग्रह है जिसमें बुन्देखण्ड की मिट्टी में रचे–पचे अपने अन्तरंग क्षणों की स्मृति है । इन संग्रह में लेखक ने अपने उन गाँवों और कस्बों का स्मरण किया है जहाँ वह अपने प्रारम्भिक जीवन में था । प्रत्येक रचनाकार अपने बाल्यकालीन परिचित परिवेश से जीवन भर शक्ति एवं ऊर्जा ग्रहण करता रहता है । यही वह समय होता है जब लेखक को एक नया और संवेदनाशील आदमी अपने भीतर उठता दिखाई देता है तथा एक व्याप्त–वात्सल्य की भावनामयी लहर उसे समीपवर्ती दु:ख के साथ एकाकार करती जाती है । संवेदनाशीलता और करूणा उसमें माधुर्य और प्रेम उत्पन्न करती है । लेखक का यही रूप नयी सृष्टि को जन्म देता है ।

11. **जीवन सच्चाई से पलायन :**

जब साहित्यकार का मूल स्वभाव स्थायी नहीं रह पाता तब वह विभिन्न भ्रम जालों में फँस जाता है और अपने आस–पास एक प्रभामण्डल बनाने में लग जाता है जो प्रभामण्डल उसे जीवन की सच्चाईयों से दूर करने लगता है । परिणाम यह होता है कि क्रमश: लेखक तिरोहित होता जाता है तथा वह भ्रम का भूत लेखक का चेहरा बन जाता है । इस मायावी सृष्टि एवं शब्दजाल से पृथक रहने वाला लेखक कालजयी साहित्य रचने में समर्थ हो सकता है ।

12. **कथा–भूमि – बाँदा – एक प्रतीक :**

मिश्र जी ने अपने बचपन का स्मरण इस लेख में किया है । लेखक को दु:ख

है कि औद्योगीकरण संस्कृति और जनसंख्या की वृद्धि ने बाँदा के जीवन को प्रभावित किया है। मानवीयता, सौहार्द और वे नैतिक मूल्य जो व्यक्ति को जीवन्त अर्थवत्ता प्रदान करते थे, धीरे–धीरे तिरोहित होते जा रहे हैं । उसे आज बाँदा उदास दिखता है । सम्भवतः ऐसा ही सर्वत्र हो रहा होगा ऐसी सम्भावना लेखक को है, क्योंकि बांदा का चित्रण एक नमूना है, आधुनिक संसार की परिवर्तनशीलता का ।

13. **"संघर्षशील संस्कारों का चित्रण"** :

"अपने पात्रों के भीतर" निबन्ध में लेखक की मानसिक वुनावट और संस्कारों का एक सजीव चित्र है, जिसमें अपनी नानी के संघर्षशील जीवन के माध्यम से संर्घषरत पुरानी पीढ़ी का स्मरण किया गया है । बिना शालीनता खोये उदरपूर्ति का साधन जुटाने का संघर्ष जीवन का एक नया रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है ।

14. **नवोदित कहानीकारों का दिशा–निर्देश** :

"सारिका कथा–प्रतियोगिता प्रसंग – एक, दो, तीन, चार लेखों में नवोदित कहानी लेखकों की नई–नई कहानियों की समीक्षा करते हुए मिश्र जी ने उन्हें दिशा–निर्देश भी दिया है तथा उनका मार्ग–दर्शन भी किया है ।

15–16. **कवि समीक्षा** :

"दृष्टिकोण" नामक खण्ड में मिश्र जी ने बुन्देली के महाकवि ईसुरी, वीरेन्द्र मिश्र, राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त और कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर की रचनाओं की समीक्षा की है । महाकवि ईसुरी बुन्देली के एक प्रसिद्ध और अमर गायक थे तो वीरेन्द्र मिश्र एक सफल गीतकार मैथिली शरण गुप्त जनतान्त्रिक मूल्यों के गायक राष्ट्रकवि है तो रवीन्द्र नाथ टैगोर कलात्मक छल से पृथक रहने वाले कहानीकार थे ।

17. हिन्दी लेखक की कुण्ठा :

अपने 20 वर्षों से ऊपर के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मिश्र जी कहते हैं कि अधिकतर आज का हिन्दी लेखक कुण्ठाग्रस्त है । यह कुण्ठा मूलतः अंग्रेजी और उन सुविधाओं के दबाव से उत्पन्न होती है, जिन्हें हिन्दी लेखक देखता है कि वे दूसरे वर्गों को उपलब्ध है, पर उसे नहीं मिला है । फलतः वे पारस्परिक खींचातानी में अधिक तथा रचनाधर्मिता की ईमानदारी को बरकरार रखने में कम संलग्न हैं । उनमें ईर्ष्या घर किए हुए हैं ।

18. दुर्घटनाओं पर चिन्ता :

मिश्र जी ने अपने दो लेखों 'बुद्धि की यह जहरीली गैस" और "महाविनाश के घेरे में आदमी" में से पहले में भोपाल गैस काण्ड को तथा दूसरे में रूस के चेरनोबिल परमाणु संयत्र में हुई दुर्घटना को उठाकर आज की वैज्ञानिक प्रतिस्पर्धा की स्थितियों में मानव–सुरक्षा की चिन्ता व्यक्त की है ।

19. विदेशों में भारतीयों की स्थिति पर चिन्ता :

"इंग्लैण्ड में भारतीयों की स्थिति" लेख के द्वारा मिश्र जी ने इंग्लैण्ड वेलस और स्काटलैण्ड में प्रवासी भारतीयों की स्थिति, उनके साथ किए जा रहे व्यवहार और उनके सम्मान–असम्मान का उभारते हुए विदेशों में भारतीयों की स्थिति पर चिन्ता जतायी है ।

20. नारी शोषण के प्रति जागरूक :

मिश्र जी नारी-शोषण के प्रति भी जागरूक लगते हैं । "हृदय फिर जाग उठे" लेख में एक दृष्टान्त देकर मिश्र ने नारी–शोषण की समस्या का सुन्दर समाधान ढूँढ निकाला

है कि पुरूष के प्रति बदले या समानान्तर स्त्री-शक्ति खड़ी करने की भावना की अपेक्षा यह अच्छा हो कि पुरूष हृदय में जागृति उत्पन्न की जाय, उसे समझाया जाय तथा उसे स्त्री-महत्व सुझाया जाय ।

21. **गुरूजनों के प्रति श्रद्धा :**

मिश्र जी ऐसे विद्यार्थी रहे थे जो अपने गुरूजनों के प्रति सम्मान का भाव रखते थे। प्रो. देव की प्रशंसा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । पं. भवानी प्रसाद मिश्र की कविता के प्रति उनका रूझान भी यही प्रकट करता है । "सप्तर्षि का आलोक" भी अपने विश्वविद्यालयी जीवन-काल में सम्माति सात विद्वान शिक्षकों के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित किया गया है । एक परिचित और स्नेहमय वातावरण को समेटे यह लेख कस्बाई निश्छलता को प्रकट करता है।

22. **बढ़ती भाव हीनता और मानव-नियति की चर्चा :**

"इन दिनों" नामक लघु निबन्ध में मिश्र जी ने ईमानदारी से वर्तमान समाज में बढ़ती भावहीनता और मानव-नियति का उल्लेख किया है जिससे प्रतीत होता है कि आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में मनुष्य एक निरूद्‌देश्य अथवा लक्ष्य हीन दौड़ में यों ही सम्मिलित हो रहा है । केवल भागने के लिए भाग रहा है ।

इस प्रकार गोविन्द मिश्र का निबन्ध-साहितय जो सुन्दर है उसे बचाये रखने के लिए आज के लेखक को प्रेरित करता है । उनके जैसा लेखक अपनी आस्था और अस्मिता की रक्षा करने हेतु हमें सन्नद्ध करता है । उनके निबन्ध-संग्रह सौद्‌देश्य और विशेषता युक्त होते हैं । उनके निबन्धों की विशेषताएँ ऊपर गिनाई जा चुकी है ।

भाषा शैली :

उपन्यास और कहानियों में प्रयुक्त भाषा-शैली की भाँति ही मिश्र जी के निबन्धों

की भाषा–शैली है । प्रथम तथा निबन्धों की भाषा पर दृष्टिपात किया जाय तो इनके निबन्धों की भाषा के चार ही रूप दृष्टिगोचर होते हैं ।

1. साहित्यिक भाषा,
2. सरल–सुबोध भाषा;
3. मिश्रित भाषा और,
4. हास्य–व्यंग्यपूर्ण भाषा ।

1. साहित्यिक भाषा :

मिश्र जी के निबन्धों में साहितियक भाषा का प्रचुर प्रयोग हुआ है । साहित्यिक भाषा के अर्न्तगत शुद्ध तत्सम शब्द, संस्कृत निष्ठ शब्दावली, समस्त पदावली तथा अलंकृत भाषा का प्रयोग होता है । इनकी साहित्यिक भाषा के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं –

'व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हुए साहित्य अपरोक्ष रूप से समाज को भी प्रभावित करता है । साहित्य के लिए यह स्थिति कि उसके अधिकांश पाठक मध्यवर्ग के होते हैं, इस प्रभाव को व्यापक ही बनाती है, क्योंकि मध्यवर्ग ऊपर और नीचे दोनों वर्गो पर असर डालता चलता है । यह लारेंस, रिल्के और जौवस जैसे व्यक्तिवादी लेखक भी मानते दिखते हैं कि साहित्य एक ऐसा अदृश्य केन्द्र बिन्दु है, जिसके इर्द–गिर्द आकर आदमी का व्यक्तित्व.... यहाँ तक कि सामाजिक चीजें भी पिघल जाती हैं । बदल जाती हैं.... एक आग जिसके इर्द–गिर्द बैठकर जीवन को सेंक दी जा सकती है, ...।[1]

और भी – हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि साहित्य के कोई ठोस लक्ष्य नहीं हो सकते.... लेकिन सूक्ष्म लक्ष्य भी कम अहं नहीं है, क्योंकि ये जीवन को विस्तार देते हैं, उसे भौतिक तक ही सीमित नहीं रह जाने देते । क्या जीवन वही है जो हम देखते हैं या करते हैं ? जीवन के ठोस पक्ष का साक्षात्कार तो हर व्यक्ति अपने दैनंदिन जीवन में कर लेता है । साहित्य में वह उस पक्ष को ढूँढता है जो ओट रह गया है, इसीलिए यथार्थ

1. लेखन और समाज – परिवर्तन (साहित्य का सन्दर्भ) – पृष्ठ 5

को जाते हुए भी उससे परे जाने की अपेक्षा साहितय से की जाती है । साहित्य की नैतिकता समाज की नैतिकता की तरह स्थिर नहीं होती है, सतत् और बेबाक पड़ताल द्वारा अपनी और समाज दोनों की ही रूढ़ियों को काटती हुई वह नई–नई नैतिकता का निर्माण करती चलती है ।....[1]

और भी एक सुन्दर उदाहरण –

जैसे जीवन कोई रणक्षेत्र नहीं है, जहाँ बहुत तैयारी काम आती हो, उसी तरह समाज भी कोई कूड़े का ढेर नहीं और न ही साहित्यकार जमादार कि झाड़ूँ उठाई और साफ कर आए । जैसे जीवन से बहुत एठने निकले तो कुछ नहीं मिलता.... वैसे ही जो लेखन गला फाड़कर समाज–परिवर्तन, चिल्लाता हुआ आता है, वह वाकई कोई भूमिका निभा पायेगा.... इसमें सन्देह है ।[2]

इस उद्धरणों की भाषा शुद्धता लिए हुए साहितियक खड़ी बोली है जिसमें भाषा कुछ अलंकृत हो गयी है, जैसे कि साहित्य एक केन्द्र–बिन्दु है जैसे सेंकने वालों की बीच जलती आग । जीवन का रणक्षेत्र के समान और समाज को कूड़े का ढेर तथा साहित्यकार को जमादर कहना ।

अन्यत्र भी कतिपय उद्धरणीय स्थल देखे जा सकते हैं यथा – "....अभिव्यक्ति की सच्चाई, प्रामाणिकता, प्रयोगशीलता की निरन्तरता, नये होते रहने की प्रक्रिया, जीवन–दृष्टि की महत्ता, कथ्य का कोंण, यथार्थ–बोध, अनुभूति परकता, "जीवन के झंलकर या भोगकर लिखने की वाध्यता", कथ्य के अपने शिल्प से अद् भूत होने की अनिवार्य स्थिति ....संवेदनात्मक अभिव्यक्ति.... (....) और भी जाने क्या–क्या गढ़कर लड़ाई में झोंक

---

1. लेखन और समाज – परिवर्तन (साहित्य का सन्दर्भ) – पृष्ठ 7
2. लेखक और समाज परिवर्तन (साहित्य का सन्दर्भ) – पृष्ठ 8

दिया गया । वाग्जाली का यह सिलसिला आज भी चालू है, जब लेखक वैयक्तिक उपलब्धि नहीं, समष्टि की उपलब्धि बताया जाता है (....) ।[1]

इस उद्धरण में तत्सम शब्दों की प्रधानता, समास प्रधान पदावली और गूढ़ अर्थपूर्ण शब्दावली का प्रयोग दृष्टव्य है । एक और उदाहरण दर्शनीय है – "जैनेन्द्र का कहानी – संसार जरूर इस संसार से दूर, सात समुद्र पार वाला संसार लगता है, वहाँ के लोग और है, वहाँ की बातें और हैं और जब जैनेन्द्र इस संसार में उतरते भी हैं, तो सिर्फ आदर्श पात्रों और आदर्श बातों के ही बीच ।....[2]

अन्य स्थल पर भी साहित्यिक भाषा का प्रयोग देखा जा सकता है, यथा – "महाभारत की छोटी-से-छोटी उपकथा का आगे विस्तार इतना होता है कि उसमें ऋषि, राजा, देवता, नाग, पशु.... तीनों लोक, सभी कुछ आ जाता है । इसी तरह के विस्तृत आयाम का आभास हमें अपने लोक साहित्य में भी मिलता है । पंचतन्त्र में पशु–पक्षी हैं, तो बैताल–पच्चीसी में नायक राजा विक्रम नहीं, बल्कि मुर्दा है, जिसकी मद्द से ही राजा विक्रम की जीत होती है । आधुनिक साहित्य में इस विराट परम्परा का अन्तिम प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र में मिलता है । उनके कथा–जगत् में चिड़ियाँ हैं, वीर बाहुभद्रवाहु हैं.... नारद हैं.... विज्ञान, अविज्ञान है.... और भी न जाने क्या–क्या है ।[3]

"कथा-भूमि" निबन्ध–संग्रह में भी साहित्यिक भाषा के प्रभावपूर्ण एवं सुन्दर स्थल दृष्टिगोचर होते है जहाँ साहित्यिक खड़ी बोली भाषा का शुद्ध रूप प्रयोग किया गया है । प्रस्तुत हैं कुछ स्थल.....("वह ऋजुता" निबन्ध में)

---

1. आज की कहानी - एक सर्वेक्षण (साहित्य का सन्दर्भ) – पृष्ठ 37
2. साहित्य का सन्दर्भ – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 39
3 साहित्य का सन्दर्भ - गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 75

"आम धारणा है कि साहित्य रचने के पीछे मनुष्य की अमर होने अपने को बचाए रखने की आकांक्षा छिपी होती है.... पर मुझे लगता है कि स्वयं को समाप्त कर देते की आकांक्षा ज्यादा है । जीवन के सब बड़े अनुभव.... साहित्य और संस्कृति की संरचना, प्रजनन, प्रेम, भक्ति.... ये अने को मारने और जीवित रखने–दोनों ही आकांक्षाओं को एक साथ क्रियान्वित करते दिखाई देते हैं । इसके पीछे प्रकृति का आशय शायद यही है कि समाप्त होने और बचे रहने, मरने और जन्मने.... ये द्वन्द्व नकली है । प्रकृति के यहाँ कुछ नष्ट नहीं होता, न ही ऐसा कोई बिन्दु है ठीक जहाँ मरण हो और उसके आगे जन्मना। इस तरह की सीमा रेखाएँ दरअसल मनुष्य के ज्ञनन की सीमायें है ।"[1]

और "कथा–भूमि–बाँदा" लेख की ये पंक्तियाँ –

'झाँसी से मानिकपुर तक.... फिर बुन्देलखण्ड के हिस्से ही । खूबसूरत नदियाँ, पहाड़ियाँ, जंगल और बरावरी के साथ चलता हुआ सूखा–सूखा विस्तार । सब कुछ जीवन सा । झाँसी से निकलते ही बेतवा, ठिलठिलाती सुकुमारी की तरह छोटे-बड़े पत्थरों के बीच छल–छल बहती, ओर छा पर करघनी की तरह पड़ी हुई । सुन्दरता में बेतवा और नर्मदा बे–जोड़ हैं । दर–असल मुझे ये नदियाँ कम, इठलाती दौड़ती सुन्दरियाँ ही लगीं हमेशा ....चिरंतन यौवन की प्रतीक ।"[2]

यहाँ साहित्यिक भाषा का अलंकृत रूप दर्शनीय है । "मेरे सपने" लेख की कुछ पंक्ति भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं – "....अजीब हैरत हुई यह महसूस करके कि प्यार की कोई उम्र नहीं होती । ठीक पहले जैसा ही । चाँदनी से झरती हुई मिठास, अपनी आभा से सारी दुनियाँ आलोकित करती हुई, एक व्यक्ति से उठती हुई, खुशबू सारी दुनियाँ को महकाती हुई उससे सट कर खड़े होते ही देवत्व की सरहदों तक उठ जाना ....।[3]

---

1. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 11
2. वही – पृष्ठ 15
3. वही – पृष्ठ 30

यद्यपि इस अन्विति में अजीव हैरत, महसूस, उम्र, खुशबू, सरहदों जैसे उर्दू भाषा के शब्द हैं तथापि भाषा की साहित्यिकता प्रभावपूर्ण बनी हुई है ।

"पीपल के पत्तों में बजती हवा" लघु निबन्ध में कवि एवं गीतकार वीरेन्द्र मिश्र की व्यस्तता द्रष्टव्य है –

"यह प्राप्ति इतनी उदात्त, तोषप्रद और गरिमामयी होती है इसके आगे कुछ नहीं ठहरता । बम्बई की चकाचौध भी वीरेन्द्र मिश्र को वहाँ लपेटे पाती । कवि अपने छोटे–से घर में बैठा गीतों के छोटे–छोटे दिय जलाने मो व्यस्त हैं.... दिये जो उठते तो उसके एकान्त से हैं, पर जिनकी लौ लपकती है अनन्त की विराटता की ओर....।[1]

इस प्रकार प्रभावित होता है कि गोविन्द मिश्र के दोनों निबन्ध–संग्रहों के संकलित लेखों में साहित्यिक भाषा का प्रयोग पर्याप्त रूप में हुआ है ।

2. <u>सरल – सुबोध भाषा</u> :

साहित्यिक भाषा के प्रयोग की भाँति ही गोविन्द मिश्र के लेखों में सरल–सुबोध खड़ी बोली भाषा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है । "यथा नाम तथा गुण" की कहावत के आधार पर मिश्र जी की भाषा स्वाभाविक रूप से ही सहन, सरल और सुबोध है। उदाहरणार्थ कुछ उद्धरणीय एवं दर्शनीय स्थल यहाँ प्रस्तुत हैं –

"लेखन और समाज–परिवर्तन' निबन्ध में – "लेखक समाज को बदल सकता है, इस बात को एक आस्था के रूप में पालना एकदम अलग तरह की बात है, पर मैं आस्था के पहले उसका यथार्थपरक विश्लेषण करना चाहूँगा । इस उस जमाने में है, जब मनुष्य

---

1. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 52

इसलिए साहित्य भी.... दोनों ही तलछटी में ढकेल दिए गए हैं । हमारे चारों तरफ वैज्ञानिक उपकरणों, उपभोक्ता संस्कृति की चीजों का अपार अम्बार है, जो हमें अपना वार्तालाप आदमी और प्रकृति से कम इन चीजों से ज्यादा करने को बाध्य करता है ।"[1]

"प्रेम चन्द और हमारा बौनापन" समीक्षात्मक निबन्ध में प्रयुक्त भाषा कितनी सहज, सरल और सुबोध है, देखिए – "....एक डंडी की जड़ वाला पेड़ एक लकीर के आकार में ही लगता है । बड़े होने के लिए उसकी जड़ों को जाल की तरह नीचे फैलना होता है । ....तभी ऊपर की धनाव आता है । प्रेमचन्द घने वृक्ष ये और हम हैं सिर्फ इकहरी ऊँचाई के दमदार. । प्रेम चन्द युग की तुलना में आज के यथार्थ में पेचीदगियाँ कितनी बढ़ गयी हैं । ऐसे युग में तो विधिता की और भी कद्र होनी चाहिए । ....।[2]

इसी प्रकार "कथा–भूमि" संग्रह के लेखों की भाषा की अधिकतर सहज, सरल और सुबोध है । यथा – "अपनत्व – जहाँ हर घर दूसरे घर का रिश्तेदार हो, जहाँ लड़की की शादी में पूरी बस्ती–की–बस्ती हाथ बटाने आगे आ जाये, जहाँ हर जगह मामा–मौसी हो, चाहे जिस जाति के हों – ये हमारी बाँदा जैसी छोटी बस्तियों की खासियतें हैं । दुर्भाग्य से, ज्यो–ज्यों औद्योगिक संस्कृति और बढ़ती आबादी का दबाव शहरों के आगे इन बस्तियों पर भी बढ़ता जा रहा है, ये चीजें उठती जा रही हैं ।....[3]

"बुन्देली कवि ईसुरी" के प्रति भावात्मक भाषा प्रयोग – "एक पौधे के उगने, बढ़ने, सूखने और झर जाने में जैसे आवाज नहीं होती, किन्तु एक मधुरलय फिर भी होती है, ...कुछ–कुछ ऐसी ही लय मुझे ईसरी के जीवन और रचनाओं में दिखाई देती है । इस लय को पकड़कर जीवन–क्रम से गुजरना ही प्रकृति का अभीष्ट है ....।[4]

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 3
2. वही – पृष्ठ 35
3. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 19
4. वही – पृष्ठ 48

3. **मिश्रित भाषा :**

मिश्रित भाषा से हमारा तात्पर्य ऐसे भाषा प्रयोग से है जिसमें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू और स्थानीय भाषाओं के वाक्यों, वाक्यांशों या शब्दों का प्रयोग मिलता है । गोविन्द मिश्र इस दृष्टि से निराले लेखक हैं, क्योंकि वे स्वयं कहते हैं कि मेरी अपनी कोई भाषा नहीं है, अगर है तो वह ढर्रा है जो हर लेखक का बन जाता है जरूर बनता है और उससे में बच नहीं सकता ।[1]

गोविन्द मिश्र की मिश्रित भाषा के कुछ उद्धरणीय स्थल प्रसंगानुसार यहाँ प्रस्तुत हैं –

"हमें यह सीमा को भी परिभाषित का लेना चाहिए, जहाँ तक साहित्य समाज को परिवर्तित कर सकता है । हमारे जैसे समाज में क्या साहित्य गरीबी, भुखमरी खत्म कर सकता है, आर्थिक समानता ला सकता है ? मार्क्स ने कहा था –

"Material fcrce must be overthrown by material force but theory too becomes a material force as soon as it has gripped the masses."

शायद इसी कथन के तहत अधिकांश मार्क्सवादी साहित्यकार अपनी रचनाएँ करते हैं । लेकिन अगर वे सिर्फ मार्क्सवादी 'थियौरी" को "मटोरियल" फोर्स बनाने के लिए लिख रहे है तो वे लेखक कहाँ, कार्यकर्ता हैं ।"[2]

और भी – "बुलावा जरूर होता है । आप इसे इन्सपिरेशन कहें या कोई टीस कहें जो उठती है – कुछ भी कहें, आखिर लिखने की या लिखने के लिए तैयार होने की

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – (लेखक की जमीन) – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 19
2. साहित्य का सन्दर्भ - (लेखक और समाज–परिवर्तन) – पृष्ठ 6

या कटिबद्ध होने की कोई चीज, कोई बिन्दु तो है जहाँ से शुरूआत होती है । लेकिन मेरा ख्याल है कि ये चीजें अलग-अलग होती हैं ।[1]

एक और उदाहरण –

"सशक्त लेखक सिर्फ तभी आता है, जब लेखक सिर्फ अपनी लकीर पर चलता होता है.... किसी के क्षेत्र को आदर्श क्षेत्र बताते हुए लेखक ही हाथ आता है । काफका की बात – "ए मैन हू फॉर सेक्स", हिमसेल्फ डजनॉट एचीव एनीथिंग" (जो मनुष्य अपने स्वको खो देती है फिर उसे कुछ भी हॉसिल नहीं हो पाता) – लेखक के स्तर पर और भी जयादा सही है ।[2]

और भी – "हम सब्जेक्टिव होते हैं तो उस स्तर के नहीं हो पाते जहाँ भीतर की अथाह गहराइयों, ऊहा पोहों को पकड़ सकें । हमारी निस्संगता भी उस हद तक नहीं हो पाती जहाँ वह निर्भय हो सके ।"[3]

एक साहित्यिक, भाषा युक्त मिश्रित भाषा का श्रेष्ठ उदाहरण भी देखा जा सकता है –

"मुख्य पात्र को जन्म से मृत्यु तक तानना या मुख्य पात्र के दीदी-बीबी स्कूल-दफ्तर आदि सभी परिवेशों को उठाना – बड़े परिवेश का अर्थ यह भी हो सकता है । और दूसरा यह कि जिन बातों को उठाया गया है, उसके सभी पक्षों - पहलुओं को उठाया जाए, और इनके कार्य-कारण-परिणाम सब पर गहरी नजर रखी जाए । तीसरी यह कि जो विशालकाय "कैन्वास" बनेगा, वह राजनैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और भी इसी तरह की दृष्टियों, चेतनाओं का पसराब होगा ।'[4]

---

1. साहित्य का सन्दर्भ (लेखक और समाज-परिवर्तन) – पृष्ठ 11
2. वही – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 77
3. वही पृष्ठ 85
4. वही पृष्ठ 103

'कथाभूमि"में भी ऐसे स्थल देखे जा सकते हैं, नमूनार्थ कुछ स्थल दृष्टव्य हैं –

'हर रोज दो लाइनें लिख लीं या एकाध पैरा सुधार लिया, छुट्टी के रोज दो–चार पेज लिख लिए, जिसे अगली छुट्टी में उठाकर खारिज कर मारा ।[1]

और आगे "दूसरी तरफ वह लेखन जो घर के बाहरी हिस्से में खुले दफ्तर में टाइपराइटर पर खटाखट किया जाता है ।रोज नियमित रुपसे, किसी चीज पर कुछ क्थ्भी लिख लिए–(......)यह मशीनी लेखन तो साहित्य कतई नहीं है । अब्बल तो यह मात्र रूपया कमाने का ही यह अथकंडा है....."बहुत हुआ तो यह अपने को बराबर 'सर्कुलेशन"में रखना है ।[2]

एक और नमूना- .....जिस इलाके में हम थे वहाँ कुछ जातिवादी ग्रुप काम कर रहे थे। अवसर कुछ पोस्टर भी दिखाई देते थे, एक में सरदार जी का चित्र बनाकर लिखा हुआ था– "दे वॉट योर जाब्स"

"दे वॉट योर होम्य"

"दे वॉट योर कन्ट्री"

वह एक बस–स्टाप था ।[3]

एक अच्छा–सा नमूना भी देखिये –

"फिराक साहब का ख्याल आते ही तनी स्प्रिंग की तरह ऊपर खिंचा हुआ चेहरा सामने आ जाता है ....।–अपनी बातचीत में पर मुशायरे में खासतौर से लफ्जों या जुमलों पर एक तरह से ढंग–सा जाना फिराक साहब की खास अदा थी । ....इसका तआल्लुक उनके भंयकर व्यक्तिवादी होने से था....मामूली बात पर भी वे जब्ज्जोतलब करते थे ...। 4

1– कथा भूमि (वह ऋजुता) गोविन्द मिश्र – पृ0 13
2. वही – पृ 13
3. वही – पृ. 66
4. वही – पृ. 88

कहने का अभिप्राय है कि गोविन्द मिश्रजी की भाषा ऐसी भाषा है जिसमें सभी प्रसिद्ध भाषाओं बोलियों–उपबोलियों, यहॉ तक की स्थानीय ग्रामीण अथवा आंचलिक शब्द भी समाहित हो गये हैं । जहॉ जिस शब्द की आवश्यकता पड़ी, वहॉ उसी भाषा या बोली के शब्द को स्थान दे दिया, फिर कर दिया । इसी कारण उनकी भाषा कबीर जैसी खिचड़ी भाषा बन गयी है जो मिश्रित भाषा की जा सकती है ।

4– हास्य व्यंग्ययपूर्ण भाषा –

गोविन्द मिश्र ने यत्र–हास्य रस पूर्ण भाषा का प्रयोग किया है तथा कहीं–कहीं व्यंग्य का पुट भी दिखाई देता है । उदाहरणार्थ दृष्टव्य हैं कुछ स्थल स्थल –

"बॉदा स्टेशन । लड़के की धुकधुकी बढ़ जाती है । .....स्टेशन के बाहर लोगों की कतार और एक किनारे से उठती हुई बुलन्द आवाज – "मूमफली का बाप मूमफल, रेबड़ी का बाप रेबड़ा, जिसमें बसा है केवड़ा ....।[1]

इसी लेख में एक और हास्य का प्रसंग देखने योग्य है – अंगद–रावण संवाद– 'कभी–कभी तो संवाद के दौरान बतबढ हो जाती । रावण कह देता, देसरे का माल चुराकर बोल रहा है ।"अंगद कहता – "साले । इतने जूते पड़ेगें..... 'रावण सिंहासन छोडकर नीचे आ जाता, "बड़ा आया जूते मारने वाला । "प्रबन्ध लोग बीच–बचाव करने दौड़ पड़ते ।[2] और भी – 'दूसरी औरत से दो बच्चे हो गए और पटठा फटेहाल हो गया ।"[3](हृद्य फिर जाग उठे)

---

1. कभाभूमि – गोविन्द मिश्र – पृ0 16

2– वही पृ0 17

3– वही पृ0 68

"मेरे लिए होली अपने भीतर से बाहर निकलने, बाहर से जुड़ने का त्यौहार है । भाग्य से कुछ इलाहाबादी दोस्त दिल्ली में अब भी हैं । उनके साथ जमीन में खूब लूट्अप–लुट्टा मचता है । गधेकी तरह जमीन पर लौटने – जबरदस्ती ही सही – का एह यही तो मौका आता है ।"[1] (होली – भीतर बाहर)

अन्यत्र एक और उदाहरण द्रष्टव्य है –

"संगम के हनुमान का प्रसाद लाया है ।"
"अबे आज के दिन हनुमान क्या करने आ गया....
बम–बम भोले की बात कर नशापत्ती की....
'सुना है हुजूर का मिजाज....
"क्या हुआ मिजाज को...."

* * *

"....ठाकुर साहब मुलायम पड़े । बोले, अरे कुछ नहीं यार ! ये लौडे–लपाड़े साले आराम नहीं करने दे रहे थे, सोचा थोड़ा यहाँ आकर ठण्डी हवा खाई जाय ।"[2]

इस प्रकार स्पष्टतया प्रतीत होता है कि गोविन्द मिश्र की भाषा विविधता लिए हुए हैं ।

शैली :

जैसा कि अध्याय के प्रारम्भ में निबन्धों के प्रकारों का उल्लेख करते समय स्पष्ट किया गया है निबन्ध कई प्रकार के होते हैं जैसे वर्णनात्मक निबन्ध, विचारात्मक निबन्ध,

---

1. कथा–भूमि – बाँदा – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 87
2. वही (किन्तु उड़ान में पेटी बाँधे रहना ही उचित है) – पृष्ठ 92

भावात्मक निबन्धक, विवरणात्मक निबन्ध, आलोचनात्मक – गवेषणात्मक, विवरणात्मक निबन्ध, आलोचनात्कक – गवेषणात्मक निबन्ध इत्यादि । इसी प्रकार मिश्र के निबन्ध जहाँ कई प्रकार के हैं वही उनकी शैली भी इसी आधार पर कई प्रकार की हो सकती है । मुख्य रूप से उनकी शैली को निम्नलिखित भेदों में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. वर्णनात्मक शैली,
2. विचारात्मक शैली,
3. विवरणात्मक शैली,
4. भावात्मक शैली,
5. आलोचनात्मक शैली,
6. गवेषणात्मक शैली, और
7. व्यंग्य–प्रधान शैली ।

1. वर्णनात्मक शैली :

इस शैली के अर्न्तगत वर्णनीय वस्तु, स्थान, व्यक्ति, दृश्य आदि का वर्णन किया जाता है । यह व्यक्तिगत निरीक्षण के आधार पर होता है जिसमें यथार्थ का चित्रण होता है। श्री गोविन्द मिश्र ने अपने कई निबन्धों में इस शैली को अपनाया है, विशेषकर कथा–भूमि निबन्ध–संग्रह में इस शैली के कुछ उदाहरणीय स्थल इस प्रकार हैं ।

"कैन, बवेसरु पहाड़ के उस तरफ वाले छोर से रेल के पुल फिर पुल पार श्मशान और आगे वाले मोड़ तक.... मुश्किल से डेढ़ किलोमीअर का फॉसला । लेकिन इतने में ही केन की कितनी मुद्राएँ । धोबी घाट घुटरून पानी तेजी से दौड़ता नीचे नीचे दौड़ते रेतकरण । हम खुली ऑखों में छींटे मारने का खेल खेला करते । * * * देखों कितना साफ पानी है । अब तुम्हारी नजर हमेशा साफ रहेगी, हँसकर यह तुमने कहा था या केन ने ? पार ककड़ी, खरबूजों के बाड़े....[1] यह दृश्य का वर्णन रहा, किन्तु

1. कथाभूमि – बॉदा – पृष्ठ 16

व्यक्ति का वर्णन इसी शैली मे देखिए – "बम्बई में वीरेन्द्र मिश्र मेरे लिए रहे होंगे । अब वे बन्धुवर वीरेन्द्र मिश्र थे.... लेकिन मैंने देखा कि उनका व्यक्तित्व बिल्कुल उनकी कविता जैसा ही था.... संगीत की तरह नाद उठाता, झरने की तरह कल–कल बहाता – जैसे पीपल के पत्तों के बीच हवा गुजर रही हो, आप उसका बजना सुन रहे हों । वीरेन्द्र मिश्र में हम साफ देख सकते हैं कि प्रकृति कैसे एक व्यक्ति के माध्यम से कविता की निर्झरी बहाती चली जाती है ।[1]

2. **विचारात्मक शैली :**

इस शैली में तर्कपूर्ण विवेचना, विश्लेषण और कुछ शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक विचार व्यक्त किए जाते हैं । इसमें आलोचना और विवेचना दोनों ही रहती हैं । "साहित्य का सन्दर्भ" और "कथाभूमि" दोनों ही निबन्ध–संग्रहों में इस शैली को अपनाया गया है । प्रस्तुत है कुछ उद्धरण–स्थल – "लेखन और समाज–परिवर्तन" निबन्ध से - "अक्सर हमें ऐसे लोग मिल जायेंगे जो हाथ फैलाकर पूछते हैं कि बताओ हमें साहित्य क्या देता है.... मतलब रूपया जैसी कौन–सी ठोस चीज ? मैं जबाब एक प्रति प्रश्न से दूँगा - हमें जीवन क्या देता है । वे पूछेंगे, साहित्य, क्यों ? मैं कहूँगा.... साफ हवा क्यों ? वे पूछेंगे, साहित्य कहा है तो मेरा प्रश्न होगा – मनुष्य कहाँ हैं ? साहित्य का प्रभाव–क्षेत्र इसलिए सीमित नहीं हो गया है कि वह अपठनीय हो गया है या कि राजनीति का पिछलगू हो गया है । बल्कि इसलिए कि हमारे चारों तरफ चीजों का बाजार है । जैसे मनुष्य को ढूँढने के लिए गोता लगाना पड़ता है, वैसे ही साहित्य को भी पाठकों की भी बात एक हकीकत है ।[2]

---

1. कथा–भूमि – (पीपल के पत्तों में बजती हवा) – पृष्ठ 52
2. साहित्य का सन्दर्भ – पृष्ठ 4

इस उद्धरण में मिश्र जी भी शास्त्रीय विवेचनात्मक शैली की झलक मिलती है ।

एक अन्य स्थल पर तर्कपूर्ण विवेचना द्रष्टव्य है –

'मैं सोचता हूँ कि लेखक के और सारे हथियार गौण हैं असली बात है उसके अपनी जमीन से जुड़ने की । इसी को परम्परा–परम्पर जरा वैसा शब्द है, लगता है आप बहुत कन्जरवेटिव हैं, नए ख्याल भी आप नहीं लेते नए प्रभावों को आत्मसात् नहीं करते । मेरे साथ ऐसा नहीं है । इसलिए मैं अपने को परम्परावादी नहीं कहता हूँ, लेकिन जब में भी कुछ को अपनी जमीन से जोड़ना चाहता हूँ । तो सोचता हूँ कि लेखक होने के लिए जरूरी है, तो उस परम्परा को आलोचक की दृष्टि से नहीं, बल्कि बड़ी सहानुभूति से देखता होता है । आपकी पीढ़ी उस परम्परा से बहुत आगे निकल चुकी है, लेकिन अगर आप एक हिन्दुस्तानी बुजुर्ग आदमी को समझना चाहते हैं, तो आपको उसके दृष्टिकोण में जाना होगा – यह बहुत मोटी–सी बात है । वैसे ही परम्परा को समझने के लिए उस दृष्टिकोण में जाने की कोशिश करना जरूरी है । तो जब तक उस परम्परा की कोशिश नहीं करेंगे, तब तक आप अपनी जमीन से नहीं जुड़ सकते और जब तक आप अपनी जमीन से नहीं जुड़ते हैं, आप लिखते रहिए, लेकिन मैं नहीं सोचता हूँ कि आप बहुत बड़ी चीज लिख सकते हैं ।[1]

आज की कहानी - एक सर्वेक्षण में मनोवैज्ञानिक विचारों का उद्धरण द्रष्टव्य है –

आज की कहानी मुख्यतः महानगर–बोध की कहानी है । हो सकता है यह अनुभूत के लिखने की जिद्द की बजह से ही हुआ हो कि आज की कहानियाँ ज्यादातर महानगर की मानसिकता को उठाती चलती हैं । उनकी ज्यादातर स्थितियाँ कॉफी हाउस रेस्तराँ, होटल, ड्राइगरूम या महानगर की सड़कों की हैं । इसका ऊपरी कारण तो यही

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – (लेखक की जमीन) – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 25

दिखता है कि अधिकांश लेखक महानगरों से सम्बद्ध थे, लेकिन यह भी सच है कि अकेलेपन और असहायता का जो स्वर इस दौर की कहानियों का मुख्य स्वर है, उसका गहरा अहसास महानगर में ही होता है ।[1]

3. **विवरणात्मक शैली :**

जब किसी वृतान्त या घटना का समय-बद्ध विवरण दिया जाता है, तब इस शैली का प्रयोग किया जाता है । . मिश्र ने ऐतिहासिक-सामाजिक घटनाओं एवं जीवन के विविध क्रिया-कलापों का विवरण देते हुए इए शैली को अपनाया है । उनकी इस शैली के कतिपय उद्धरण इस प्रकार दिये जा सकते हैं –

"प्रेम चन्द और हमारा बौनापन" निबन्ध में प्रेम चन्द विषय ऐतिहासिक वृतान्त पर दृष्टिपात कीजिए – "प्रेम चन्द कभी-कभी वाद से नहीं जुड़े । वे कभी असाधारण आर्थिक कष्टों में नहीं रहे और जैसे रहे, उसकी ढपली उन्होंने कभी नहीं बजायी.... उसे गौरव की बात तो कभी नहीं माना.... अपने घर का सबसे अच्छा कमरा उनके लेखन के लिए था.... भले ही वह जमीन पर बैठकर लिखते थे.... आदि-आदि ।[2]

एक ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत – "बड़े लड़ैया महुबे वाले.... हमरे जमे करेजे वार.... बोले छपक-छपक तलवार ।" पहले-पहल जिस साहित्य के स्वर कानों में उतरे, वे आल्हा के ही थे । चरखारी में बगल के घर में ही रामस्वरूप मामा बॉचते थे, लालटेन की रोशनी में । वही महोबा आल्हा-ऊदल का । यहॉं से खजुराहों के मन्दिर कोई तीसेक किलोमीटर के फॉसले पर हैं, चन्देल राजाओं के काल में उस समय बनवाये गये हैं, जब महोबा और दिल्ली की कटाकट मची रहती थी । पृथ्वी राज चौहान

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – (लेखक की जमीन) – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 61
2. वही – पृष्ठ 31

आल्हा-ऊदल के रहते महाबा नहीं जीत पाये थे । एक तरफ युद्ध, दूसरी तरफ खजुराहों....[1]

मिश्र जी के कुछ निबन्धों – यथा इंग्लैण्ड में भारतीयों की स्थिति, हृदय फिर जाग उठे बुद्धि की यह जहरीली गेस, महाविनाश के घेरे में आदमी – में सामाजिक घटनाओं का उल्लेख इसी विवरणात्मक शैली में किया गया है, जैसे –

"भोपाल की हरियाली से छनती आती स्वच्छ हवा, जिसे मैं, जब भी वहाँ जाता था भर पेट पीता था, पानी की तरह, प्रकृति की ऐसी कृपा । वही दवा विषाक्त हो गई । कितने मरे, कितने अन्धे हो गए, कितनों के मस्तिष्कों को लकवा मार गया, कितने गर्भ गिर गए, कितने मासूम बच्चे तड़प–तड़प कर सो गए । लावारिस पड़ी लाशें, क्रब खोद–खोदकर गाड़ना पड़ रहा है.... जैसे किसी दुश्मन ने हमना किया और एक दम भीतर आकर कैमीकल वारफेयर" पर उतारू हो गया । ....पता नहीं कितने दिनों तक ?[2]

हृदय फिर जाग उठे लेख में नारी–शोषण की सामाजिक बुराई का चित्रण देखिये – "हमारे समाज में शोषण नारी का ही होता है, हर स्थिति में वही शोषिता है.... ऐसी मान्यतायें मुझे साधारण किरण लगती हैं । नारी भी तो पुरूष शोषण करती है और कहीं–कहीं वह कितनी जान लेवा होता है.... इसके उदाहरण हमारे आस–पास मिल जायेंगे । बेशक ये उतने आम नहीं जितने पुरूष द्वारा नारी के शोषण के हैं ।....[3]

---

1. कथाभूमि – बॉदा – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 15
2. वही (बुद्धि की यह जहरीली गैस) – पृष्ठ 71
3. वही – पृष्ठ 68

4. **भावात्मक शैली :**

हृदय तत्व अथवा रागात्मकता प्रधान निबन्धों की शैली भावात्मक होती है । इस शैली में लेखक की तीब्र अनुभूति काव्यत्व लिए होती है तथा भाषा मधुर और ललित होती है । प्रस्तुत हैं कुछ उद्धरणीय स्थल –

"हमारे समाज में लेखकों का जो स्तर गिरा है, उसके जिम्मेदार हम स्वयं हैं, हमारा आचरण है । * * * इस सिलसिले में अपने देश की ऋषियों की परम्परा याद आती है.... ऋषि का रहना और जब–तब आकर राजा को समझा जाना.... राजा का उस की तपस्या और त्याग की वजह से आदर करना.... शाप.... यह सब आज भी प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है । ऋषि....सब कुछ छोड़ देने वाला । और आज का लेखक सब कुछ निगलने की आकांक्षा रखता है । भूल जाता है कि नैतिक शक्ति जिसके बगैर लेखन नहीं हो सकता, वह सब कुछ छोड़ देने से ही आती है ।"[1]

"मेरी रचना–प्रक्रिया" लेख से एक उदाहरण " "मैं मुक्ति चाहता हूँ मुक्ति के ख्याल के पार सपने हैं, खिले फूलों की तरह मुस्कराते हुए.... वह समाज जहाँ तकलीफें, न हो, लोग जिनमें आदमियत हो, वे मूल्य जिनमें आदमियत पनप सके.... और भी न जाने कितने । सपनों को साकार करने का तरीका मुझे नहीं मालूम.... बड़े–बड़े विचार मुझसे निकलकर बहें.... ऐसी अपनीं औकात नहीं.... आवाज में उस आँधी का जोर नही जो क्रान्ति ला दे.... ।[2]

और भी –– "चाँदनी से झरती हुई मिठास अपनी आभा से सारी दुनियां आलोकित करती हुई, एक व्यक्ति से उठती हुई खुशबू सारी दुनियां को महकाती हुई, उससे सटकर खड़ें होते ही देवत्व की सरहदों तक उठ जाना .... ।[3]

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 80
2. कथाभूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 24
3. वही (मेरे सपने) – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 30

5. <u>आलोचनात्मक शैली</u> :

जब किसी विषय का वस्तु की समीक्षा की जाती है उसकी विशेषताओं और सीमाओं पर विचार किया जाता है, तब इस शैली का आश्रय लिया जाता है । कथा–भूमि के कुछ निबन्धों के अतिरिक्त "साहित्य का सन्दर्भ" संग्रह में विशेष कर इसी शैली को मिश्र जी ने अपनाया है । दृष्टव्य हैं कुछ उदाहरणीय अन्वितियाँ –

"आज की कहानी – एक सर्वेक्षण" निबन्ध में नयी कहानी की समीक्षा देखी जा सकती है – "यह जरूर है कि परिवेश के प्रति यह खुला आग्रह आज लिखी जा रही हर कहानी में नहीं दिखता । अब भी पात्र या घटना प्रधान कहानियाँ है, बहुत जगह सामाजिकता के नाम पर पीछे घिसटती हुई नई कहानी की पीड़ागत संवेदना है, तो कहीं संघर्ष का रूमानी आदर्शीकरण, जो समानान्तर ही चल रहा है । अगर कुछ कहानियाँ आज की कहानी के पहले दौर से आगे नहीं जाती दिखती तो कुछ वापस नयी कहानी की तरफ दौड़ रही हैं ।[1]

"हिन्दी उपन्यास – जातीय सम्भावनाऐं, निबन्ध में वर्तमान काल में लिखे जा रहे उपन्यास – तत्वों की विवेचना देखिये –

"वे तत्व जो किसी उपन्यास को विशिष्ट बनाते हैं विस्तार और जटिलता । गहराई.... ये हमारे समाज में किस हद तक हैं और किस रूप में है – यह विचारणीय है । परिवेशगत विस्तार और जटिलता की हमारे यथार्थ में कमी नहीं, लेकिन आन्तरिक जटिलताऐं और गहराइयाँ अपेक्षाकृत कम हैं । हमारे समाज में व्यक्ति कम, टाइप ज्यादा मिलेंगे । इसलिए मानसिक स्थितियाँ, प्रतिक्रियाऐं, चिन्तनक्रम ज्यादातर स्पष्ट होते हैं, उतने उलझाव–भरे तो कहीं नहीं जितने पश्चिम में ।....[2]

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 73–74
2. वही – " " – पृष्ठ 84

"ऐतिहासिकता और मानवीयता के बीच" निबन्ध में भीष साहनी के उपन्यास "तमस" पर आलोचनात्मक विवेचन द्रष्टव्य है – "भीष्म साहनी के "तमस" को काया के हिसाब से वृहत् उपन्यासों की बड़ी वाली पाँत में नहीं रखा जा सकता, लेकिन यह आता उसी श्रेणियों में ही है, क्योंकि इसमें भी पसराव या फैलाव है । गठन और सघनता नहीं है । साथ ही किस्सा–गोई की तरफ लेखक जाने–अन्जाने अक्सर वह गया है, जैसे बन्तोहरनाम सिंह के प्रसंग जो प्रेम चन्द की "क्षमा" कहानी का फैलाया गया रूपान्तर लगता है या गुरूद्वारे की किला बन्दी और औरतों के कुऐँ में गिरने के बयानों में फैलाब भी काफी सपाट–सा है, जिससे लगता है कि उपन्यास को पैमाना–परकाल से नाप–जोखकर "प्लान" किया गया है ।[1]

"कथा–भूमि" के लेख "जनतान्त्रिक कवि – मैथिली शरण गुप्त में भी इस शैली के दर्शन होते हैं, यथा – "दद्दा के कृतित्व की दो चीजें मुझे बराबर अभिभूत करती हैं, हालांकि दोनों ही आज प्रचलन में उतनी नहीं है । एक तो बुन्देलखण्डी की बहुत ही समृद्ध भाषा सम्प्रदा के बावजूद उन्होंने खड़ी बोली को अपनाया, बल्कि सच कहिए तो खड़ी बोली को उँगली पकड़ कर चलना सिखाया । अपनी कविता में बुन्देलखण्डी के ओज और शकित का लाभ उठाने के बजाय वे सरल कविता की ओर चले और इस तरह कलात्मकता और कवितात्मकता के आकर्षण को परे करके भी कविता रचने का जोखिम उठाया ।....[2]

"कलात्मक छल से दूर ....टैगोर की कहानियाँ" निबन्ध में कवीन्द्र रवीन्द्र की कहानियों की समीक्षा द्रष्अव्य है –

"इन कहानियों को पढ़ते हुए, सच कहूँ तो ईर्ष्या का भाव जागा । कैसे आकाश जैसा विस्तार और मन जैसी गहराई अनायास ही है यहाँ, जबकि हमने

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 104
2. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 53

कुछ यथार्थ के और कुछ कहानी–विधा के आग्रहवश कल्पना को कितना कैद और छोटा कर दिया है । ठीक है कि आज की कहानी ज्यादा जटिल, ज्यादा संश्लिष्ट, ज्यादा यथार्थ परक और सम्भतः ज्यादा कलात्मक है, पर उसमें वह निश्छलता दूर–दूर तक नहीं जो रवीन्द्र की कहानियों में है ।....[1]

1. **गवेषणात्मक शैली :**

विचारात्मक निबन्धों की एक विशेष श्रेणी के निबन्ध लेखने के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाता है । गोविन्द मिश्र ने अपने निबन्धों में जहाँ समीक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाया है, वहाँ इस शैली का प्रयोग किया गया है । "साहित्य का सन्दर्भ निबन्ध–संग्रह के कई निबन्धों तथा "कथा–भूमि" संग्रह के कुछ लेखों में यह शैली देखी जा सकती है । कतिपय उद्धरणीय स्थल देखिये –

"अगर साहित्य गरीबी नहीं हटा सकता तो दृष्टिकोण में परिवर्तन तो ला सकता है, कोई राजनैतिक क्रान्ति नहीं ला सकता तो एक जाति में सवाल पूछते रहने कूबत विकसित कर सकता है या उसे बचाये रख सकता है । इधर यथार्थवाद की लकीर पर पर्दाफाशी लेखन को तूल दिया जाने लगा है, वह चाहे किसी विचारधारा के तहत हो या न हो ।[2]

और इसी लेख में पुनः – "अपने और समकालीन लेखन से मेरा असन्तोष एक इस मुद्दे पर विशेष है कि यह यथार्थ के नाम पर जीवन के कुरूप पर जयादा ध्यान देता है, कुछ ऐसा नहीं देता जो कष्ट की घड़ी में व्यक्ति का संबल बन सके । समाज पर असर होता हो या नहीं, व्यक्ति पर तो साहित्य का असर होता ही है । मैंने खुद भी अपनी असाधारण तकलीफ के दिन तुलसी, शक्सपीयर या गालिव की कुछ पंक्तियों पर लटक

---

1. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 59
2. "साहित्य का सन्दर्भ– (लेखन और समाज–परिवर्तन) – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 7

कर काटे हैं । मृत्यु के मौके पर गीता आज भी पढ़ा जाता है । आधुनिकता का वह कौन–सा तकाजा था कि साहित्य अपने इस कर्म से विमुख हो गया ? कया इसके पीछे यह धारणा थी कि अगर हम समाज की तकलीफें विद्रूपता की कलात्मक अतिरंजता से दिखजायेंगे तो उसके सामने व्यक्ति की अपनी तकलीफें स्वतः गौण हो जायेंगी और अपरोक्ष रूप से उसे संबल भी प्राप्त होगा.... या कि वाकई तकलीफों और विद्रूपता के अलावा कुछ है ही नहीं। मैं समझता हूँ कि सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति, सौहार्द और ऐसी कितनी ही चीजें अब भी हैं, आदमी की नंजरों में कुछ गड़बड़ आ गई है, साहित्यकार में यह सजगता ठाँस दी गई है कि तुम इन चीजों में डूबे कि पलापनवादी हो गये.... ।[1]

"आज की कहानी – एक 'सर्वेक्षण "निबन्ध में गवेषणात्मक शैली के उद्धरणीय स्थल अनेक हैं, क्योंकि लगता है यह निबन्ध पूरा का पूरा ही गवेषणापूर्ण विचारात्मक निबन्ध की श्रेणी में रखा जा सकता है । एकाध उदाहरण प्रस्तुत है.... "बावजूद इसके आज की कहानी में न केवल साफ बल्कि गहरे देखने का भी आग्रह दिखता है । इसलिए कहानी ज्यादातर एक स्थिति की ओर उठ चलती है और उसे उसकी सारी पेचीदगियों में देखने की कोशिश करती है । यह स्थिति रवीन्द्र कालिया की "बड़े शहर का आदमी" की तरह सिर्फ दो दोस्तों के बीच एक सुबह हो सकती है या ज्ञारंजन की "सम्बन्ध में भाई की आत्महतया की आशंका – या किसी रेस्तरां की एक साधारण–सी स्थिति.... कोशिश हमेशा पात्रों के मनोविश्लेषण से बहुत आगे उस स्थिति के पीछे उस सारी मानसिकता में घुस जाने की है जहाँ वह अपने समय की मानसिकता से जुड़ती है.... ।[2]

इसी प्रकार "कथा–भूमि" में सारिका कथा–प्रतियोगिता–प्रसंग – 1, 2, 3 व 4 में नवोदित कथा–लेखकों की कहानियों की गवेषणात्मक समीक्षा की गई है । एक–दो स्थल द्रष्टव्य हैं –

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – (पूर्ववत्) – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 9
2. वही – " " – पृष्ठ 59

"फिर भी एक वह चीज तो है जो युगों से चली आ रही है और चलती रहेगी.... वह जो एक लेखन को ग्राह्य और अपने अभाव में दूसरे लेखक को आग्रह्य बनाती है । भारतीय साहित्यिक परम्परा के अर्न्तगत हम इस चीज को "रस" के नाम से जानते हैं । आधुनिकता की आड़ लेकर हम इससे भाग नहीं सकते । मेरे लिए वे सारे उपक्रम जो एक विधा में रस की सृष्टि करते हैं (....) वे सभी कलातमकता के अर्न्तगत आते हैं । साहितय न तो सिर्फ जीवन है, न विचारमात्र, और न ही भावनाओं का निरंकुश उद्घोष, बल्कि इन सभी का कलात्मक गुम्फन है ।...."[1]

एक और स्थल –

"ऐसी संवेदनशीलता, जो सजने से इन्कार करती है – यह देखने को मिली इन कहानियों में ।.... मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि संस्कृति और भाषा दोनों रास्तों से कहानीकार अपनी जड़ों की तरफ जा रहे हैं.... और सचमुच स्वयं को ढूँढने के लिए हमें पीछे अपनी ओर अपनी परम्परा की ओर बार–बार लौटना होगा, आप कह लीजिए मुझ कुछ। मैं यह भी कहूँगा कि अपनी अस्मिता की खोज वही है और यह आजीवन चलती रहनी चाहिए ।[2]

7. **व्यंग्य–प्रधान शैली :**

मिश्र जी ने अपने निबन्धों में यत्र–तत्र आधुनिकता के नाम पर आँख मूँद कर पाश्चात्य परिपाटी का अनुकरण करने वाले नवोदित साहितयकारों पर तथा विज्ञान पर व्यंग्य भी किया है । यह व्यंग्य सापेक्ष और सार्थक प्रतीत होता है । उदाहरणार्थ कुछ स्थल –

---

1. कथा–भूमि – (सारिका कथा – 1) गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 39
2. वही – पृष्ठ 44

"इस सब चीरा–फाड़ी में खुद को समर्पित करने के लिए हमने एक–से–एक शब्द भी चलाये.... कभी प्रामाणिकता.... तो कभी सार्थकता । हम प्रेम चन्द को छोटा करते गये.... साहित्य और जिन्दगी को भी छोटा करने की कोशिश की, लेकिन ये सब खैर क्या छोटे होंगे.... हमी छोटे हो गये ।[1]

आज के लेखकों की दशा–दिशा पर व्यंग्य –

"लेखकों के झुंड को अगर भेड़–बकरियों की तरह हॉकने की कोशिश की जाती है, तो नतीजा कुछ यही होता है कि प्रेमचन्द से सिकुड़ती–सिकुड़ती कहानी वहाँ जा पहुँची है जहाँ पहले फिल्मी स्क्रिप्ट लिखी जाती है और उसी को उपन्यास में तानकर साहित्य–जगत् में ठेल दिया जाता है । जहाँ यथार्थ परकता फिल्मी कहानी लिखवाने लगती है । जहाँ हॅकने वाले भेड़ों की मिमियाहट से ज्यादा कुछ नहीं पैदा कर पाते और हॉकने वाला गड़रिया बन कर रह जाता है ।[2]

"बुद्धि की यह जहरीली गैस" निबन्ध में भोपाल गैस त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य की बुद्धि के वैज्ञानिक विकास पर व्यंगय देखिये "सभ्यता का यह अजीब दौर है । * * * बुद्धि के मायने है, विशुद्ध, करीब–करीब क्रूर चालाकी और सबसे बड़ा मूल्य जो इस सभ्यता ने हमें पकड़ाया है, वह है स्वार्थ सिद्धि, क्योंकि स्वार्थ "बुद्धि" का दत्तक पुत्र है । हर व्यक्ति को इसे साधना है ।....[3]

और आगे पुनः कहा गया है –

"ओ दुर्घटना की चपेट में आये हुए लोगों ! तुम्हारा कसूर था कि तुम उस समय संसार में आए जब "बुद्धि" का नशा अपने चरम बिन्दु की तरफ बढ़ा रहा है । तुम्हारी

---

1. साहित्य का सन्दर्भ (प्रेमचन्द और हमारा बौनापन) गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 34
2. वही (समकालीन कथा साहित्य और आज का आदमी) – पृष्ठ 78
3. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 73

कमजोरी, कि तुमने जो वे कह रहे थे वही उनका आशय भी था.... ऐसा मान लिया और विश्वास किया कि वे तुम्हारा ख्याल रखेंगे । तुम्हारा दुर्भाग्य कि तुम भोपाल में थे । * *

मुझे बुद्धि से परहेज नहीं, बुद्धि ने हमें कितना कुछ उपलब्ध कराया है, पर अब प्रार्थना करने का जी करता है – प्रभु । हमारी बुद्धि को सुसंस्कृत करो मूल्यों से विहीन यह आत्मघातिनी होती जा रही है ।....[1]

"महाविनाश के घेरे में आदमी" लेख में भी वैज्ञानिक विकास पर व्यंग्य देखने बनता है –

"सबसे बड़ा मजाक यह है कि हम यह सब देखते"पहचानते चले जा रहे हैं.... थोड़ा विक्षिप्त, ज्यादा अभिशपत । तभी तो इन सारी बिना शंकारी प्रवृत्तियों को पहचानने के बाद भी हम टी.वी.जैसी उन्हीं–उन्हीं चीजों को लाते जा रहे हैं जो हमारी रही सही शक्तियों को भी चूस डाले । हम विनाश की तरह अपना सरकना देख रहे हैं ।....[2]

और इस प्रकार के अन्य स्थल भी व्यंग्यपूर्ण शैली में लिख गये हैं ।

अतः सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गोविन्द मिश्र के निबन्धों की शैली विविधता लिए हुए है ।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गोविन्द मिश्र जी के निबन्ध बहुरूपी हैं । "लेखन और समाज–परिवर्तन जैसे निबन्ध सीधे साहित्य के यक्ष–प्रश्नों से जुड़े है । महाविनाश के घेरे में आदमी" और "बुद्धि की यह जहरीली गैस" जैसे निबन्ध गैस–त्रासदी के परिवेश पर प्रतिक्रिया स्वरूप लिखे गये हैं । सारिका कथा–प्रतियोगिता के

---

1. कथा–भूमि – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 73
2. वही – पृष्ठ 79

निर्णायक–मण्डल के सदस्य के रूप में दी गयी साहित्यिक टिप्पणियाँ" नवोदित लेखकों के लिए उपयोगी सुझाव के रूप में प्रशंसनीय हैं । ये टिप्पणियाँ साहित्य के गम्भीर प्रश्नों पर बड़े सुलझे विचार सामने रखती हैं ।

"कथा–भूमि" के अधिकांश लेख व्यक्तिगत निबन्ध हैं । ये निबन्ध मिश्र जी के समस्त लिखे हुए को और स्पष्ट करते हैं तथा उनके मूल विचारों तक पहुँच सकने की सामर्थ्य का विकास करते हैं । लगता है प्रतिक्रिया स्वरूप उनका निबन्ध लेखन हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है ।

निबन्ध प्रकार की दृष्टि से गोविन्द मिश्र के निबन्ध विचारात्मक और वर्णनात्मक अधिक हैं, क्योंकि इनमें आलोचनात्मक और गवेषणात्मक विवेचना अधिक की गई है । कुछ भावात्मक एवं विवरणात्मक निबन्ध भी हैं । वस्तु की दृष्टि से मिश्र जी ने वर्तमान कथा साहित्य और उपन्यास के क्षेत्र का सर्वेक्षण करते हुए प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल , अज्ञेय, भीष्म साहनी निर्मल वर्मा बगैरहा कहानीकारों तथा उपन्यासकारों की समीक्षा की है एवं नये लेखकों को मार्गदर्शन किया है । "कथा–भूमि" में कुछ अपनी जन्मभूमि का स्मरण करते हुए बुन्देलखण्ड का दृश्य उपस्थित किया है तथा बुन्देली महाकवि ईसुरी, वीरेन्द्र मिश्र का स्मरण भी किया गया । श्री गुप्त और रवीन्द्र नाथ टैगोर की भी समीक्षा की गई है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्र जीवन के क्षणों का भी मार्मिक स्मरण प्रस्तुत किया गया है ।

भाषा और शैली की दृष्टि से मिश्र जी की भाषा और शैली विविधतामयी है उसके अनेक रूप देखने को मिलते हैं ।

*

* *

* * *